द्वितीय
खण्ड
वक्तृत्व
भाग

आस्तिकों का तो कहना है कि चींटी से लेकर ब्रह्मा तक सभी प्राणियों के देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार की क्षण-क्षण की सभी हलचलें सर्वभासक परमात्मा को विदित हैं। कौन परमाणु किस क्षण में किधर कितना चञ्चल हुआ ? चींटी आदि से भी अत्यन्त स्वल्पकाय स्तम्ब नामक कीट का भी चञ्चल मन किस काल में क्या चिन्तन करता है ? भगवान् को यह सब विदित है। क्योंकि भगवान् सभी प्राणियों के देह इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार के भासक हैं। फिर इन सबकी चेष्टा उनसे कैसे छिपी रह सकती है ?

'सबके उर-अन्तर बसहु, जानहु भाव-कुभाव। सब कर परम प्रकासक जोई, राम अनादि अवधपति सोई।'
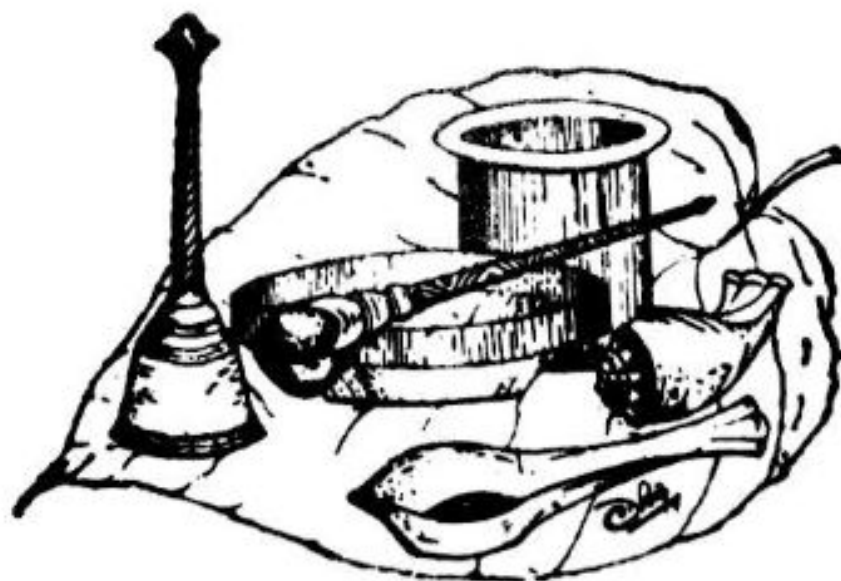
# स्वधर्मपालन और प्रभुभक्ति

महानुभाव ! आप लोग विशेषकर महात्माओं तथा सत्पुरुषों का सत्संग किया करते हैं। साधु सेवा भी किया करते हैं और जहाँ तक हो सकता है धार्मिक भावनाओं में भी निरत हैं। सत्संग में प्रायः आप कहा करते हैं कि शास्त्रों में दो वस्तुओं की महिमा है —एक तो तत्त्वज्ञान की दूसरी भगवद्भक्ति की। आप लोग प्रायः भक्ति या ज्ञान के प्रेमी हैं। अब भक्त को भगवान का साक्षात्कार होते ही क्षणमात्र में समस्त अनर्थ मिट जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक भक्त अपने भगवान का साक्षात्कार करके परम कल्याण की प्राप्ति कर सकता है। एक सेकिण्ड का स्वप्न हुआ उसमें अनन्तान्त जीव-जन्तु मिल रहे हैं और एक ही जीव ब्रह्मवध में निरत है अत्याचार कर रहा है, जीवों को महा कष्ट पहुँचा रहा है। अभी उसी एक सेकिण्ड के स्वप्न में वही जीव वेदादि शास्त्रानुकूल यज्ञों में, कर्मकाण्ड में निरत देखा जाता है। जब एक-एक जीव की अनन्तगति है फिर उनका कल्याण कोई कैसे कर सकता है। फिर इस अनन्तकोटि ब्रह्माण्डान्तर्गत अनन्तानन्त जीवों का कल्याण कोई कैसे कर सकता है ? किसी एक पुरुष के कल्याण में ही बड़ा समय लग जाता है। एक ही जीव कभी वेदानुकूल अनुगमन करता है कभी विपरीत हो जाता है। आप बड़े-बड़े महात्माओं तक को विपरीत पथगामी देखेंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे स्वप्नान्तर्गत एक ही जीव की विविध गतियाँ देखी जाती हैं तो फिर इन अनन्त जीवों का कल्याण कोई कैसे कर सकता है ? तो इसके उत्तर में वेदान्ती यही कहता है कि किसी तरह आँख खुल जाय, स्वप्न भंग हो जायें, जग जायें तो यह अनन्तकोटि ब्रह्माण्डान्तर्गत जीवों का स्वाप्निक प्रपंच सब एक दम मिट जाय, एकदम नष्ट हो जाय। अरे ! जब स्वप्न भंग हो गया तब सब गतियाँ खत्म, सब जीव स्वतन्त्र, सब प्रपंच समाप्त हो जाता है। यदि यह नींद न मिटे तो किसी तरह से भी मुक्ति नहीं और कहीं स्वप्न भंग हो गया तो यह स्वाप्निक झगड़ा टण्टा सारा मिट जाय। और जहाँ एक बार साक्षात्कार हुआ, फिर क्या है चारों तरफ आनन्द ही आनन्द हो जाता है। परन्तु जिस प्रकार पित्तदोष प्रकृति वाले को मिश्री में भी कड़वाहट प्रतीत होती है, उसी प्रकार जीव को भी अज्ञान रूपी पित्तदोष से आवृत्त होने के कारण अचिन्त्य आनन्द समुद्र खारी प्रतीत होने लगता है। परन्तु जब साक्षात्कार हुआ फिर यह खारा और यह मीठा सब टण्टा खत्म— आनन्द ही आनन्द की प्राप्ति होती है।

यदि मंगलमय भगवान के चरणारविन्दों में दृढ़भक्ति हो जाय तो संसार में कोई भी बात

---

**"प्रज्ञानं ब्रह्म।"** —ऐतरेय

(ब्रह्म उत्कृष्ट ज्ञानस्वरूप अथवा चैतन्यरूप है।)

दुर्गम नहीं। जो जगवान के चरणारविन्द में श्रद्धा, विश्वास रखते हैं, उन्हें साम्राज्य, स्वराज्य, वैराज्य, अनंतधन-धान्य तो क्या ऐन्द्रपद तक तुच्छ प्रतीत होता है। संसार के आधि, व्याधि, शोक, संताप आदि को मिटा देना भक्त के लिये कोई बड़ी बात नहीं है। जब भक्त भगवान का भजन करता है, उसे प्रेम से भजता है तो अनेक विघ्न आते हैं। जैसे सम्पत्तियों का आना, अनंत साम्राज्य, स्वराज्य इत्यादि का आना। परन्तु जब भक्त के हृदय में भगवान की भक्ति की दृढ़ भावना हो जाती है तब वह अपने भगवान तक को वश में कर लेता है फिर साम्राज्य, स्वराज्य, वैराज्य, अनन्त धन-धान्य को वश में करना उसके लिये क्या बड़ी बात है? अत: भक्त इन वस्तुओं की इच्छा नहीं करता। करे क्यों? जब सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वाधिष्ठान भगवान ही उसके वश में हैं। भक्त प्रह्लाद ने भगवान की प्रार्थना की तो भगवान को उस ठोस खम्भे में से निकलना पड़ा, जिसमें एक सुई की नोक को भी प्रवेश करने को स्थान नहीं था; परन्तु सिहाद्रि चूड़ामणि, भक्त आर्तनाशक नरसिंह भगवान उसी से प्रगट हो गये। हिरण्यकशिपु ने जब कहा कि यदि तेरे भगवान अकारण करुण करुणावरुणालय, सर्वव्यापक हैं तो इस पाषाण के खम्भे में दिखाई क्यों नहीं देता? भक्त से भगवान के प्रति कठोर शब्द नहीं सुने गये। कहा कि मंगलमय भगवान के सर्वव्यापक होने में 'वेदा: प्रमाणम्' – वेद ही प्रमाण हैं। फिर आर्त स्वर होकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से गद्‌गद् कण्ठ होकर भगवान की प्रेमपूर्वक स्तुति करने लगा कि वेदों के अनुसार यदि आप सर्वव्यापक हैं और यह वेद प्रमाण रूप से सत्य हैं और आप में मेरी अनन्य भक्ति है तो हे भगवान 'मैं खम्भे से आपका का दर्शन चाहता हूँ।' जब भगवान ने देखा कि भक्त ने प्रण कर डाला है कि हमारा परमात्मा सर्वव्यापक है, तब सोचा कि हेतु तथा उदाहरण आदि का नाटक हम प्रत्यक्ष ही करते हैं। क्या हुआ? उसी ठोस पाषाण खम्भे से जिसमें सुई की नोक बराबर स्थान खाली नहीं था, सिंहाद्रि चूड़ामणि भगवान नरसिंह एक कनकाचल से निकले पहाड़ के समान, भयानक शरीर से जिसमें विकराल मुख, सूर्य के समान तेजस्वी नेत्र तथा विकराल द्रष्टा थे, अपने अनन्य भक्त के सामने प्रगट हो गये। और हिरण्यकशिपु का वध किया। इसके कहने का इतना ही केवल तात्पर्य है कि अघटित घटना पटीयसी मायापति, अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक, अज, अखिलेश, अशोष्य, अग्राह्य, अचिन्त्य भगवान भक्त के कहने से ही जड़ खम्भे से प्रगट हो गये और सिंहासन पर आसीन हो गये। समस्त लोकपाल दिक्‌पाल तैंतीस करोड़ देवता भगवान के स्वरूप को देखकर भयभीत हो गये। किसी की हिम्मत नहीं हुई कि उनके पास भी चले जायें। दूर से ही प्रार्थना करने लगे परन्तु जब भगवान का भयानक स्वरूप शान्त नहीं हुआ तब लक्ष्मी जी को भेजा कि आप ही जाकर शान्त कर सकती हो। परन्तु कहने लगीं कि यद्यपि मैं भगवान के सर्वदा समीप रहती हूँ परन्तु ऐसा स्वरूप मैंने कभी आज तक नहीं देखा, इससे तो मुझे भय लगता है। तब समस्त देवताओं ने भक्त प्रह्लाद को भेजा। वह भक्त सिंह

**"अहं ब्रह्मास्मि।"**

(वह ब्रह्म मैं हूं।) —बृहदारण्यक

के बच्चे की तरह भगवान के समीप गया। जिस स्वरूप से देवता डरे। साक्षात् लक्ष्मी जी तक भयभीत हो गयीं उस स्वरूप के आगे भक्त प्रह्लाद ने जाकर भगवान के चरणों में मस्तक रक्खा। भगवान ने प्रेम से गोद में बैठाया, मस्तक सूंघा तथा प्यार किया और प्रेम में विभोर होकर भगवान अपने भक्त से कहने लगे कि आने में विलम्ब हो गया। विलम्ब के कारण आप को कष्ट हुये होंगे। अरे! अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक भगवान अपने भक्त से यह कहकर क्षमा माँगते हुये कहते हैं कि कहाँ पाँच वर्ष का बालक का शरीर और कहाँ उसके द्वारा दी गयी तीक्ष्णातितीक्ष्ण यातनाएँ। उसे समुद्र में बहाया गया। पर्वत से ढकेला गया, कालकूट विष पिलाया गया, अग्नि में जलाया गया। भगवान कहते हैं कि यदि हमारे आने में विलम्ब हो गया हो तो क्षमा करना। अरे ! कर्तुमकर्तुमअन्यथाकर्तुम सर्व समर्थ भगवान भक्त से क्षमा भी माँगते हैं और रक्षा भी करते हैं साथ ही साथ भक्त के कर्जदार भी बने रहते हैं। भगवान को कर्जदार बनने की सुन्दर बान है। हनुमान जी से कहते हैं कि 'प्रति उपकार करहुं का तोरा। सम्मुख हुई न सकत मन मोरा।।' हे हनुमन्तलाल तुम्हारे एक एक उपकार के अनन्त जीवन सदा कर्जदार रहेंगे। तुम्हारे शरीर में कभी विपत्ति न हो ताकि मुझे तुम्हारी सहायता करने का अवसर मिले और मैं तुम्हारी सहायता करके तुम्हारे उपकार से उऋण हो जाऊं। तात्पर्य यह है कि ज्ञान तथा भक्ति के द्वारा ही भगवान की प्राप्ति हो सकती है। दोनों में एक हो चाहे ज्ञान हो या भक्ति। भक्ति क्या ? भगवान में प्रीति होना, भगवान की आज्ञा मानना। जितना स्वाद भगवान की आज्ञा मानने में है उतना किसी भी वस्तु में नहीं। भगवान की आज्ञा क्या है ? भगवान कहते हैं कि 'श्रुति स्मृति, वेद-शास्त्र ही तो मेरी आज्ञा है अतः इसका पालन करने से ही परम कल्याण की प्राप्ति हो सकती है। परन्तु मित्रों ! गीता-गीता तो रटे जाओ और उसकी पूजा किये जाओ परन्तु उसमें जो लिखा हुआ है उपदेश, भगवान की आज्ञा, उसका पालन न करो तो क्या लाभ होगा। एक व्यक्ति ने अपने मित्र को तार दिया कि मैं ३ बजकर ३० मिनट पर आपके नगर के स्टेशन पर पहुंच रहा हूँ किसी सवारी इत्यादि का प्रबन्ध कर देना। इधर मित्र का तार पढ़कर वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसको सोने के सिंहासन पर रखा, उसकी पूजा की, आरती उतारी और फिर सपरिवार बैठकर 'तार आया, तार आया' ऐसा कहकर कीर्तन करने लगा। परन्तु उसमें जो लिखा था उस पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। उधर वह स्टेशन पर आता है वहाँ अपने मित्र को न देखकर बड़ा आश्चर्य में हुआ। सवारी इत्यादि का भी कोई प्रबन्ध नहीं देखकर बेचारा बड़ा परेशान हुआ। लाचार होकर परेशान मन से सर पर सामान लादकर बेचारा स्वयं गर्मी में आया। आकर देखा कि मित्रवर तार आया, तार आया का कीर्तन कर रहे हैं। कहने लगे भाई क्या कर रहे हो ? उत्तर आया

**"तत्त्वमसि।"**

(वह ब्रह्म तू है।) —छान्दोग्योपनिषद

कि कीर्तन कर रहा हूँ और यह कहकर गले से लिपट गया। मित्र को खेद भी हुआ और हँसी भी आयी। कहने लगा कि आप की इस प्रकार की प्रीति के क्या लाभ ? आप कीर्तन कर रहे हो परन्तु आपने उस पर भी कुछ ध्यान नहीं दिया कि जो उसमें लिखा था। आपकी यह प्रीति कौड़ी काम की भी नहीं। एक आदमी तो भेजा नहीं गया और यहाँ तार का कीर्तन कर रहे हो इससे क्या लाभ ? इसी प्रकार गीता गीता रटने से कोई पुण्य नहीं। अरे गीता गीता तो कहते हो परन्तु गीता में जो लिखा है उसको मानते नहीं तो फिर कल्याण कैसे सम्भव है। गीता में भगवान स्वयं कहते हैं कि :—

**"स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः सं सिद्धि लभते नरः।**<br>
**स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु॥**<br>
**यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।**<br>
**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दति मानवः॥"**

सबको अपने-अपने धर्म का पालन करना चाहिये। अपने-अपने स्वाभाविक कर्म में निरत रहने से ही प्राणी परमसिद्धि को प्राप्त होता है। परन्तु सब कुछ निस्वार्थभाव से निश्छलभाव से करते हुए अन्त में कह देना चाहिये 'शिवार्पणमस्तु।' शम, दम, तप शौच, क्षमा, ज्ञान, विज्ञान और परमात्मतत्त्व का चिन्तन आदि स्वाभाविक कर्म करते हुये समष्टिहित दृष्टि से ब्राह्मण को अपने स्वाभाविक कर्म में निरत रहते हुये शिवार्पणमस्तु का संकल्प कर देना चाहिये। शौर्य, तेज, धैर्य, चातुर्य, युद्ध से कभी न विमुख होना, दान देना तथा राष्ट्र रक्षा, गो, ब्राह्मण की रक्षा करते हुये प्रजा पालन रूपी स्वाभाविक कर्म का सम्पादन करते हुये क्षत्रियों को सब कुछ शिवार्पणमस्तु कर देना चाहिये कृषि, गौरक्षा, व्यापार आदि में सत्य का व्यवहार करते हुये वैश्य को तथा परिचर्यारत रहकर, शिल्पकर्म को उन्नत करते हुए, प्रभु के नाम का संकीर्तन करते हुये शूद्रादि को सेवारत रहना चाहिये तथा अहंभाव को त्याग कर सब कुछ प्रभु को समर्पित करते हुये अन्त में कहना चाहिये 'शिवार्पणमस्तु।' सारांश यही कि प्रत्येक को अपने-अपने कर्म में ईमानदारी से लगे रहते हुये प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिये कि प्रभु धर्म की रक्षा करो, राष्ट्र की रक्षा करो, गौ की रक्षा करो, वेद-शास्त्रों की तथा उन्हें धारण करने वाले ब्राह्मणों की रक्षा करो हम सब आप की शरण हैं। इस प्रकार सबको अपने-अपने स्वाभाविक कर्मों में निरत रह कर सन्तुष्ट एवं आनन्दित रहना चाहिये। स्त्रियों को अपने पति को ही भगवान मानते हुये सेवा करनी चाहिये। सास श्वसुर की सेवा करनी चाहिये यह नहीं कि सास पानी माँग रही हो और आप कह दें कि अभी तो जरा माला पूरी कर लूँ, भजन कर लूँ। शास्त्र कहते हैं कि जैसे नर्वदेश्वर शंकर को अनन्त मानकर पूजन करने से पुण्य प्राप्त होता है, इसी प्रकार स्त्री को अपने पति को परमात्मा मान

**"अयमात्माब्रह्म।"**

(यह आत्मा ब्रह्म है।) —माण्डूक्योपनिषद

कर उसकी भक्ति करनी चाहिये । सूर्योदय से पूर्व उठकर बुहारी आदि गृह कार्य करने चाहिये, बच्चों को शिक्षा देनी चाहिये, अन्य घर के कामों को प्रसन्नतापूर्वक स्वयं इसी प्रकार करना चाहिये जैसे भजन कर रही हो और अन्त में कह दिया करो 'शिवार्पणमस्तु ।'

रामायण में कहा गया है कि जो ब्राह्मण वेद-शास्त्रों का अध्ययन नहीं करता, क्षत्री राष्ट्र की रक्षा नहीं करता, वैश्य कृषि-गोरक्षण सद्व्यापारादि द्वारा प्रजापालन नहीं करता, शूद्र नाम संकीर्तनपूर्वक समाज सेवा नहीं करता, स्त्री पति सेवा नहीं करती -- तो फिर कल्याण की भी आशा व्यर्थ ही करते हैं । इन कर्तव्य कर्मों का तो पालन नहीं करते और राम राम रटते रहो, गीता गीता गाते रहो तो फिर कल्याण कहाँ ? आज की परिस्थिति में भी प्रत्यक्ष धर्म यही है जिसके आचरण से सबका कल्याण सम्भव है कि अपने अपने स्वाभाविक गीतोक्त कर्मों को करते हुए अन्त में प्रभु को समर्पित कर दो—सब कुछ 'शिवार्पणमस्तु' कर दो। तभी भक्ति और ज्ञान दोनों बन सकते हैं । प्रभु को समर्पित कर्म कल्याणकारी होते हैं । आप लोगों को टोले टोले मुहल्ले-मुहल्ले में धर्म संघ की गोष्ठियाँ करनी चाहिये उनमें इन बातों पर विचार करना चाहिये । गीता-रामायण आदि की कथाएँ करनी चाहिये । धर्म शास्त्र जो बताते हैं उन्हें जानकर समझकर तद-नुसार आचरण करना चाहिये । यहाँ तो श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी आया ही करते हैं उनसे धर्म की, शास्त्रों की बातें जान लिया करो । बिना धर्म शास्त्रों के ज्ञान के आज बड़ी भयावह परिस्थिति हो रही है। सरकार द्वारा जो 'कोड' बनाया जा रहा है उससे हिन्दू सभ्यता पर कुठाराघात किया जा रहा है उसे पास नहीं होने देना चाहिये । ऐसेम्बली पर धावा बोल देना चाहिये । उसका शक्ति भर पूरा विरोध करना चाहिये वह कोड हिन्दू धर्म-शास्त्रों के सर्वथा विरुद्ध है। सनातन धर्म का मुख्य बल ईश्वर का ही बल है । उसी का सहारा है, उसी का नाम लेकर इस अधार्मिक बिल के विरोध में उठ खड़े हो तो सफलता अवश्य मिलेगी ।

"ता कहं प्रभु कछु अगम नहिं, जा कहिं तुम अनुकूल ।<br>
प्रभु प्रताप बड़वानलहिं, जारि सकहिं खल तूल ॥"

जो बड़वानल सारे संसार को भस्म कर सकता है उसे प्रभु कृपा से एक रुई का फोवा फूंक सकता है । "मशकहिं करहिं विरंचि अरु अजहिं मशक ते हीन ।" मच्छर से क्षण भर में ब्रह्मा तथा तथा ब्रह्मा से मच्छर बनाने वाले अकारण करुण करुणा वरुणालय, अघटित घटना पटीयान सर्व समर्थ

## "अहमस्मि परं ब्रह्म परावरपरात्परम् ।"

(मैं परापर स्वरूप परात्पर परब्रह्म हूं ।)

प्रभु सब कुछ कर सकते हैं उनके बल के सामने अन्य सभी का बल नगण्य है। वायु से पूछा कि तुम क्या कर सकते हो। कहा पल भर में सब कुछ उड़ा सकता हूँ परन्तु भगवान का तिनका न उड़ा सका; अग्नि आया उसने भरसक प्रयत्न किया परन्तु तिनके को जलाने में सक्षम न हो सका; जल उसे बहा न सका सब तत्व निष्प्रभ हो गये। क्योंकि उन्होंने अपनी शक्ति पर अभिमान किया प्रभु को छोड़कर अतः असफल रहे। जैसे बिजली के पावर हाऊस केन्द्र से सम्बन्ध विच्छेद होते ही सब इंजन, मशीनें, बिजली के लट्टू मुर्दा हो जाते हैं उनका स्वतन्त्र अभिमान नष्ट हो जाता है इसी प्रकार उस ब्रह्मतत्त्व से सम्बन्ध टूटते ही संसार कौड़ी का भी नहीं रहता। उसकी शक्ति ही सारे संसार की शक्ति है। उसी परमप्रभु के श्री चरणों का सहारा लेकर इस कार्य में अग्रसर होना चाहिये। आप धर्म संघ के संकल्प से भगवान के किसी नाम का जप करो। उससे प्रार्थना करो कि प्रभु धर्म की जय करो, अधर्म का नाश, प्राणियों में सद्भावना हो और विश्व का कल्याण हो। उसकी कृपा से 'दुर्बुद्धे सुबुद्ध भवति' अतः जोर से भगवान रामचन्द्र की जय जयकार करते हुए बोलो हर हर महादेव। आप की आवाज कमजोर नहीं रहनी चाहिये। भगवान आपकी सहायता के लिये तैय्यार खड़े हैं आप अपनी निद्रा, आलस्य, उपेक्षा का परित्याग करके प्रभु नाम का सहारा लेकर अपने सहज स्वभाव का अपने स्वरूप का ज्ञान करके खड़े होकर करुण होकर उसे एक बार पुकारो तो सही— सफलता तुम्हारा वरण करेगी। प्रभु कल्याण करेंगे। यही उनकी प्रतिज्ञा है। □□

(१—४—१९४५)
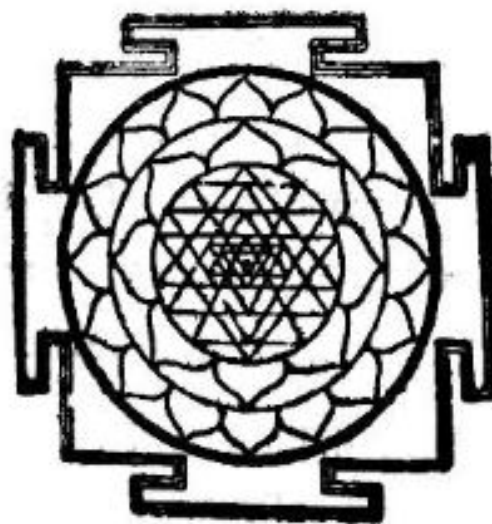
**"सर्वभूस्थितं ब्रह्म तदेवाहं न संशयः ।"**

(जो सम्पूर्ण भूतों में स्थित है, वही ब्रह्म मैं हूं—इसमें संशय नहीं है।)

# मानव जीवन की सार्थकता

संसार में मानव जन्म बड़ा दुर्लभ है। उस परम-प्रभु की परम कृपा से ही इसकी प्राप्ति होती है। उसे पाकर ही इस असार संसार समुद्र में पार उतरा जा सकता है। उस अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक प्रभु को प्राप्त किया जा सकता है। सारांश इतना ही है कि केवल इस संसार समुद्र को पार कर लेना एवं परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार कर लेना ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। भले ही हमें अनन्त धन-धान्य प्राप्त हो, अनेक विध भोग-विलास सामग्री उपलब्ध हो, सर्वविध लौकिक उन्नति के साधन प्राप्त हों, परन्तु यदि इस मानव देह को प्राप्त करके भी भगवान को पहचानने का प्रयत्न नहीं किया तो सब व्यापार निरर्थक ही कहे जा सकते हैं।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक सच्चिदानन्द परब्रह्म परमेश्वर ने अपनी अघटित घटना पटीयसी, सर्वशक्तिमयी महामाया द्वारा इस विविध वैचित्र्योपेत विश्व का निर्माण किया। नाना विध रंगों से युक्त मयूर बनाया, विलक्षण हरे रंग का शुक का निर्माण किया, अनुपम श्वेत, धवल एवं स्वच्छ पंख वाला हंस बनाया, सुमधुर कण्ठ वाली कोकिला का निर्माण किया असीम बलशाली व्याघ्र बनाया, सारांश, विविध प्रकार के, विचित्र-विचित्र प्राणियों को उत्पन्न करके भी उस प्रभु को सन्तोष न हुआ। तब भगवान ने मनुष्य को बनाया, तदुपरान्त ही प्रभु को सन्तोष हुआ, "**पुरुषं विधाय मुदमाप देवः।**"

परन्तु ऐसा क्यों ? मनुष्य ही निज बुद्धि द्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार करने के योग्य है। व्याघ्र बल पराक्रम में बड़ा हो सकता है, कोकिला के कलकण्ठ की मनुष्य चाहे बराबरी न कर सके, शुक की हरितिमा, हंस की श्वेतता एवं मयूर-पिच्छ की नानाविध रंगीनता के समक्ष मनुष्य चाहे पीछे रह जायेगा परन्तु जब ब्रह्मसाक्षात्कार एवं ब्रह्मलोकादि की प्राप्ति का प्रश्न होगा, ये सब मौन रह जायेंगे, वहाँ केवल मनुष्य की ही गति है।

परन्तु सज्जनो ! ब्रह्मलोक में पहुँचकर भी अथवा स्वर्ग में पहुँच कर भी ब्रह्मसाक्षात्कार अति दुर्लभ है। वहाँ तो चिति-चैत्य, आत्मा-अनात्मा, भास्य-भासक, दृक्-दृश्य का पृथक-पृथक ज्ञान तो है परन्तु वह ठीक इसी प्रकार दीखता है, जैसे, मलिन जल अथवा चंचल जल में अपना प्रतिबिम्ब

---

**"सर्वोऽहं सर्वात्मको संसारी यद्भूतं यच्च भव्यं।**
**यद्वर्त्तमानं सर्वात्मकत्वाद द्वितीयोऽहम्।"**

(मैं सब हूं, सर्वरूप हूँ, संसारी जीवात्मा हूँ, जो भूत, वर्तमान और भविष्य है, वह सब मेरा ही स्वरूप होने के कारण मैं अद्वितीय परमात्मा हूँ।)

स्पष्ट नहीं दीखता । ब्रह्मादि लोकों में भोग-विलास-सुख-सामग्री तो बहुत उपलब्ध हैं, परन्तु उनसे वैराग्य नहीं हो पाता, फलतः वहाँ पहुँचकर ब्रह्म-साक्षात्कार की तीव्र पिपासा का होना नितांत असंभव है । अतः, इसी दुर्लभ मानव-जीवन में ही इस असार संसार-समुद्र से पार हो जाने का प्रयत्न मानव को अवश्य कर लेना चाहिये, अन्यथा पछताना होगा ।

एक बार इन्द्र एवं विरोचन ब्रह्मा की शरण गये, ३२ वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर तपस्या की । ब्रह्मा जी प्रगट हुये और उन्हें उपदेश दिया, कहा कि दक्षिण नेत्र में जो दीखे वही ब्रह्म है । इस पर प्रश्न किया कि दर्पण में जो प्रतिबिम्ब है वह भी आत्मा है क्या ? ब्रह्मा जी ने कहा कि शकोरे में पानी भर कर उसमें देखो । वैसा ही करने पर बोले, इसमें तो बिम्ब रूपी ब्रह्म के नाक, कान, दाढ़ी, मूछ इत्यादि सभी कुछ है । ब्रह्मा जी ने कहा कि इसे मुड़ा दो । ऐसा करने पर तदनुसार ही प्रतिबिम्ब दीख पड़ा तो कहा गया जब शरीर की दाढ़ी कट गई तो आत्मा की दाढ़ी भी कट गई, इसी प्रकार शरीर का शिर कट गया तो आत्मा का शिर भी कट गया—देह नाश पर आत्मा का नाश हो जाता है—विरोचन तो यही समझकर और यही निर्णय कर तपस्या से विरत हो गया और देहातिरिक्त आत्मा नामक कोई पदार्थ नहीं, ऐसा मानकर असुर हो गया, परन्तु इन्द्र ने पुनः ३२ वर्ष ब्रह्मचर्यपूर्वक तप किया—अब की बार इन्द्र ने समझा कि जाग्रत में जिसकी अंगुली कट गई, स्वप्न में नहीं कटती, जाग्रत का अन्धा स्वप्न में खूब देखता है, परन्तु पूर्ण ज्ञान नहीं हुआ भ्रम ही रहा—फिर तीसरी और तदुपरांत चौथी बार पुनः ३२ वर्ष की पूर्ण अखण्ड ब्रह्मचर्यपूर्वक की गई तपस्या के उपरांत इन्द्र को 'वैराग्य' का उपदेश दिया –

"जैसे शूकर के लिए शूकरी, कूकर के लिए कूकरी, ठीक इसी प्रकार इन्द्र के लिये इन्द्राणी है जो स्वाद शूकर को मल भक्षण में प्राप्त होता है वही नाना प्रकार के सौन्दर्य, सौगन्ध्य, सौरस्य सम्पन्न सुमधुर पकवानों में इन्द्र को आता है इसमें तनिक भी अन्तर नहीं ।" वैराग्य के अनन्तर ही तत्व का बोध होता है । जैसे दर्पण में अपना कोई मुख निहार ले, ठीक इसी प्रकार मनुष्य ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है, परन्तु अन्तःकरण (दर्पण) शुद्ध होना चाहिये -

**"मुकर मलिन पुनि (नेत्र) विहीना, रामरूप देखहि किमि दीना ॥"**

तो ये शास्त्र ही नेत्र हैं । शास्त्र रूपी नेत्र यदि ठीक हैं तो अन्तःकरण भी पवित्र है और तभी केवल तभी 'ब्रह्मसाक्षात्कार' हो सकता है ।

तो सांसारिक विषयों से वैराग्य होना ही अत्यन्त आवश्यक है और दूर की क्या कहें, स्वयं अपने नाक, कान, आंख, मुखादि सभी छिद्रों में से भीषणतम मल निकलते देखकर भी जिसे वैराग्य नहीं होता तो फिर बताइये कि ऐसे व्यक्तियों को फिर क्या योग वसिष्ठ जी कथा सुनावें ?

**"योऽसौ सोऽहं हंसः सोऽहमस्मि ।"**

**(जो वह है, वह मैं हूँ । मैं वह हूँ और वह मैं हूँ ।)**

इस असार संसार में, इस नश्वर क्षण-भंगुर परन्तु दुर्लभ मानव शरीर को प्राप्त करके भी लोग साम्राज्य, स्वराज्य, अनन्त सम्पत्ति माँगते सुख की कामना करते हैं। परन्तु माता कुन्ती भगवान से विपत्ति की ही याचना करती हैं क्यों ? इसी लिये कि सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति कर प्रभु को भूल जाते हैं, भोग-विलास में फंस जाते हैं, परन्तु विपत्ति में व्याकुल होकर मन प्रभु चरणों में लीन हो जाता है —

**'कह हनुमन्त विपत प्रभु सोई ।**
**जब तब सुमिरन भजन न होई ॥'**

**सारांश** :—प्रभु स्मरण ही सम्पत्ति है एवं प्रभु-विस्मरण ही विपत्ति है। भगवान को भूलने पर ही दीनता, हीनता, दरिद्रता, पाशविकता एवं आधि-व्याधि, रोग-शोक, मोहादि से प्राणी घिर जाता है। व्यापक भ्रष्टाचार देश में व्याप्त होकर महान नैतिक पतन एवं चरित्र-हीनता का साम्राज्य फैल जाता है ऐसी स्थिति में एक पंचवर्षीय योजना क्या एक लाख योजना बनाओ परन्तु रहेगा सब बेकार। हम कपड़े का प्रबन्ध करेंगे कपड़ा दुर्लभ, हम रोटी का प्रश्न हल करेंगे तो पेट भर रोटी, औषध के लिये पैसा तक उपलब्ध नहीं—बच्चों को फीस तक प्राप्त नहीं। लाख कानून बनाओ, पर जब तक भगवत्-विश्वास न हो, धर्म पालन न हो, ईमानदारी न हो, सारा विधान बेकार ही है।

वैदिक काल में एक राजा घोषणा करता है कि मेरे राज्य में न शराबी है, न चोर है, न दुश्चरित्र कोई पुरुष ही है, तो दुराचारिणी स्त्रियाँ तो फिर कैसे हो सकती हैं ? महर्षि चाणक्य काल में चीनी यात्री लिखता है कि गंगा की पार फूंस की झोपड़ी में भजन में बैठा विद्यार्थियों को वेदपाठ कराते हुए वह निर्लेप महापुरुष ऐसा धर्ममय शासन चलाता था कि लोग झूठ नहीं बोलते थे, घरों में ताला नहीं लगाते थे, न्यायालय हैं, न्यायाधीश हैं परन्तु मुकदमे नहीं। सारांश यह कि जनता सुखी थी, समृद्ध थी। न रोटी की समस्या थी, न कपड़े की, न औषधि की, न बच्चों की फीस की, सब सुखी थे, सम्पन्न थे। सारांश यही कि बिना ईश्वर एवं धर्म नियन्त्रण के सुख शान्ति न मिलेगी, न योजनाएं ही सफल होंगी। यदि समाज के व्यक्ति धार्मिक हो जायें तो सुख-शान्ति-सम्पत्ति बिना बुलाये ही उमड़-उमड़ कर स्वयं चली आवेगी, जैसे विपत्तियाँ बिना बुलाये स्वयमेव आती हैं, इसी प्रकार सम्पत्ति भी आवेगी। अतः यही मूलमन्त्र है कि 'हम दीनदार, ईमानदार, भगवत्परायण हों, भगवान का चिंतन करें, निजात्मा का स्वरूप का अनुसंधान करें, सदाचारी बनें, चरित्रवान् बनें। अरे ! शास्त्र के नाम से चिढ़ो मत ! शास्त्र क्या है ? भगवत्-विज्ञान में सहूलियत उपस्थित कर देना ही शास्त्र का कार्य है। व्यष्टि, समष्टि जगत की लौकिक उन्नति के साथ-साथ पारलौकिक अभ्युदय एवं निःश्रेयस की प्राप्ति के लिए सहूलियत उपस्थित कर देना ही शास्त्रों का काम है—परम निःश्रेयस मोक्ष मार्ग की सभी बाधाओं को दूर कर देना ही शास्त्रों का काम है— और यही सारांश में रामराज्य की नीति है।

(३१-५-१९५८)

---

**"(एकोऽहं) बहुस्याम् प्रजायेय।"**

(मैं एक हूँ बहुत हो जाऊँ, प्रजारूप में उत्पन्न होऊँ।)

# जीव और ब्रह्म

भगवान का ध्यान करने से, उनके दिव्य सुन्दरता, मधुरता आदि दिव्य गुण गणों का बखान करने मात्र से ही प्रभु प्रसन्न हो जाते हैं; नाना प्रकार के यज्ञों, अनुष्ठानों एवं तपस्याओं का किया जाना आज जरा कठिन एवं असम्भव सा दीखता है। भगवान् का दिव्य मंगलमय स्वरूप हमारे मन में प्रगट हो जाये तो कल्याण ही कल्याण है, निराकार, निर्विकार रूप में प्रगट हो जाये तो भी कल्याण सगुण साकार प्रगट हो तो भी कल्याण। एक बार प्रगट होने पर मन का स्वाभाविक आकर्षण हो जाता है, न चाहने पर भी मन उसमें संलग्न हो जाता है। 'राधा' ने एक बार 'कृष्ण' नाम सुना। कानों में आया तो अन्तःकरण, प्राण, रोम-रोम, 'कृष्ण' नाम की मधुरिमा के अनुभव से लोट-पोट हो गया और उन्होंने तत्काल 'यह मधुर, मनोहर, मंगलमय नाम जिसका है उसे ही अपने सर्वस्व अर्पण का निश्चय कर लिया। ··· न भी मिलेंगे तो भी उनके नामामृत का रसास्वादन करते-करते जीवन व्यतीत करने का दृढ़ निश्चय कर लिया।' दूसरे दिन बंशी की मनोरम ध्वनि कानों में आई। मंगलमय मुखारविन्द एवं अधरामृत के संस्पर्श से बंशीनिनाद द्वारा प्रगट होकर भगवत्स्वरूप की अभिव्यञ्जना होने लगी, अनन्त सौन्दर्य्य सार समुद्र रूप प्रभु का रूप है उस पर भी सम्पूर्ण माधुर्य्य सौंदर्य्य सिमटकर प्रभु के मुख में प्रगट हुआ है, उसमें भी सब कुछ अधरामृत रूप में वेणुगीत बंशी-निनाद के रूप में गोपांगनाओं के निरावरण कर्ण छिद्रों द्वारा श्रवण करते ही वे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक मन में प्रगट हो गये—अरे यह वेणुगीत नहीं है, निखिल रसात्मक सौन्दर्य्य माधुर्य्य सिंधु भगवान् ही भक्त के हृदय में, कर्णों के द्वारा प्रविष्ट होकर प्रगट हो गये।

'प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भाव सरोरुहम्'।

भक्तों के हृदय में कर्ण छिद्रों से ही निराकार का भी प्रवेश होता है। वेदान्त वाक्यों का श्रवण करेंगे 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादि वेदान्त वाक्यों का जितना अधिक श्रवण करेंगे उतना ही हृदय में परब्रह्म का प्राकट्य होगा। शब्द की शक्ति से ही परब्रह्म का प्राकट्य होता है। निराकार-वादी को भी नाम का सहारा पकड़ना होता है। ईसाई, मुसलमान ने भी नाम को माना शब्द के महत्व को स्वीकार किया, बौद्धों में भी 'मणिपदमेहुम' की चरखी चलाते हैं, आर्यसमाजी भी मन्त्र का जाप करते हैं, सनातन धर्म में भी मन्त्र का अतुलित प्रताप है। जैसे महामत्त गजराज को भी अकुंश से वश में रखा जा सकता है उसी प्रकार मन्त्र द्वारा 'विधि-हरि-हर' सभी को वश में किया जा सकता है। जिसमें अपना पूरा विश्वास हो वही मन्त्र अच्छा है। प्रसन्न होकर एक महात्मा ने एक मन्त्र

**"ईशावास्यमिदं सर्वम्।"**

(यह सब ईश्वर से व्याप्त है।)

—ईशावास्य०
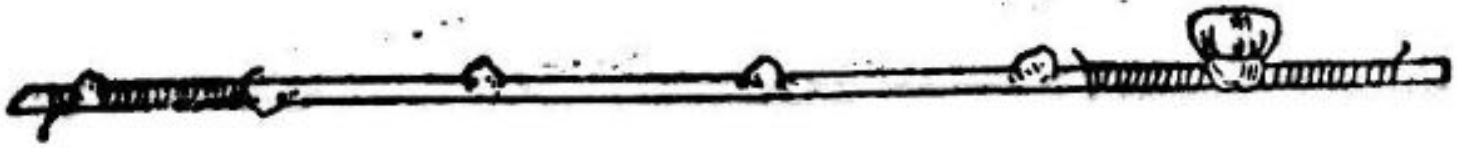
बताया, जब जपने बैठे तो देखा कि वही मन्त्र अन्य लोग भी जप रहे हैं—विचार किया कि इसे तो सभी जानते हैं अतः उसकी दृष्टि में वह महत्वहीन हो गया, उसका विश्वास हट गया तो फिर वह मन्त्र ही उसके लिये व्यर्थ हो गया जैसे हीरा किसी को मोल कराने हेतु दिया गया तो जो उसे जानता है, पहचानता है उसके लिये तो लाखों का अरबों खर्बों का और जो नहीं जानता उसके लिये तो आधा सेर बैंगन के मूल्य के रूप में भी स्वीकार करना कठिन – ठीक ऐसे ही मन्त्र का भी महत्व समझना चाहिये। सगुण साकार प्रतिपादक वाक्यों द्वारा सगुण साकार परब्रह्म का प्राकट्य होता है और निर्गुण निराकार का प्राकट्य वेदान्त वाक्यों से होता है। शब्द हैं 'उद्गार'। अनुभवित रस उच्छलित होकर कण्ठ ताल्वादि से स्पर्श होकर जो शब्द प्रगट होता है वही है 'उद्गार' उसका भावना द्वारा परिवर्धन किया जाता है। रस का चर्वण जितना-जितना होता है उतना-उतना रससिंधु—उद्वेलित सिन्धु बन जाता है – "शोकः श्लोकत्वमागतः"। सीता बनवास से सन्तप्त महर्षि बाल्मीकि के हृदय में तमसा नदी के तट पर क्रौंच पक्षी के करुण क्रन्दन मात्र से रस समुद्र उमड़ आया। हृदय में रस भरा है, वह आघात मात्र से छलकता है, ऐसा करुण रस से परिपूर्ण हृदय आहत हुवा, रस उच्छलित हुआ—वह करुण रस ही उद्गार बन कर 'राम चरित्र' के रूप में प्रगट हुआ। इसी प्रकार श्रीकृष्ण ने वेणु धारण से अधर सुधारस परिपूरित किया, वह वेणुगीत पीयूष गोपी के अन्तःकरण में प्रगट हुआ। वे रस चर्वण करने लगी—वह अन्तरात्मा में भरपूर हो गया चर्वण करते-करते—वही मुख पकंज में आया—वही 'वेणुगीत' के रूप में उन गोपांगनाओं ने गाया। 'शब्दब्रह्म' के रूप में वह 'वेणुगीत' उन्नीस श्लोकों के रूप में 'श्रीमद्भागवत्' में वर्णित है। श्रीनाथद्वारा में भगवान् के शृंगार को सूरदास अन्धे, नित्य वैसा ही गाया करते थे तो - अनुभूयमान तत्व ही उच्छलित होकर बाहर छलकता है वह ब्रह्म रस ही होता है, प्राकृत शब्द नहीं है—वह स्वरूप की अभिव्यक्ति कर देता है। ब्रह्म विद्या परमतत्व विलक्षण, असाधारण व्यक्तियों द्वारा अनुभूत होकर ही प्रगट होता है वैसे ही नहीं—आश्चर्य्यवत् कोई-कोई कहता है, कोई-कोई सुनता है फिर भी समझ नहीं पाता यह ब्रह्मतत्व बड़ा विलक्षण है। —तो गोपांगनाओं के हृदय में वेणुगीत प्रविष्ट हुआ—क्षण में प्रेमोन्माद होने लगा—तीसरे दिन एक चित्र श्याम सुन्दर को दिखाया – दर्शन करके तुगं विद्या ने वहीं दिव्य शक्ति का निर्माण किया – राधारानी को दिव्य चित्र दिखाया —राधारानी का चित्त उसमें लीन हो गया—राधा को शंका हुई कहने लगी कि 'हमें न छुवो—हम पतित अशुद्ध हो गई—अपने प्राणों का परित्याग कर देंगी हम—सखी एक दिन तो श्रीकृष्ण नाम कानों में आने मात्र से मैंने अपने आपको उसी को अर्पित कर दिया, यदि न भी मिले तो भी नाम के सहारे ही जन्म को अर्पण कर दिया—दूसरे दिन वेणुगीतनिनाद से प्रेमोन्माद की परम्परा चल पड़ी – और यह तो चित्रपट दिखाया इतने मात्र से स्निग्धघनद्युति—नील

---

**"प्राणोऽस्मि।"**

(मैं प्राण हूँ।)

—कौषी०

नीरद की तरह श्यामघन मेरे अन्तःकरण में लिपट गया। तीन-तीन पुरुषों से मेरी प्रीति हुई तो क्या मेरा पातिव्रत्य भंग नहीं हुआ ? मैं तो प्राणों का त्याग कर दूंगी'।

**"एकस्य श्रुतमेव लुम्पतिमतिं कृष्णेति नामाक्षरं,**
**सान्द्रोन्माद परम्परामुपनयत्यन्यस्य वंशीरवः।**
**एषा स्निग्ध घनद्युतिर्मनसि मे लग्ना सकृद् वीक्षणात्**
**हा धिङ्मे पुरुषत्रये रतिरभून्मन्येमृतिः श्रेयसी॥"**

ललिता विशाखा आदि सखियाँ हँस पड़ीं—बोलीं—'वह एक ही तो है, उसी का वेणु, उसी का यह चित्र और उसी का तो यह नामाक्षर है—वह एक ही है'—तब सन्तोष हुआ राधारानी को।

·· सार यह है कि जहाँ इस प्रकार से भगवत्स्वरूप का लोकोत्तर माधुर्य्य प्रगट हो तो फिर इन्द्रियों में वहीं अटके रहने की खींचातानी होने लगती है। जैसे लोक में बहुत सी सपत्नियाँ, इन्द्रियाँ, मनुष्य जीव को अपनी-अपनी ओर खींचती हैं इसी प्रकार जिस समय भगवान् का दर्शन होने लगता है उस समय भक्त की इन्द्रियों में खींचातानी चलती है, अरे ! आँख घ्राण, त्वक्; एक-एक रोम में करोड़-करोड़ घ्राण हों तो उस परब्रह्म को अनुभव करने को मन करता है। सांसारिक पदार्थों में यह आकर्षण अनर्थ-कारक होता है परन्तु भगवान् के प्रति यह खींचातानी, यह अटक आकर्षण कल्याणकारक होता है। संसार की, लौकिक वस्तुओं की लालसा, तृष्णा, लोभ भटकते रहने का कारण बनता है वही लालसा, तृष्णा यदि भगवच्चरणारविन्द में हो जाये तो जन्म-जन्मान्तरों, युग-युगान्तरों, एवं कल्प-कल्पान्तरों के पापपुंजों का नाश हो जाये, परम पद की प्राप्ति हो जाये।

**"मच्चिता मद् गत प्राणा बोधयन्तः परस्परम्।**
**कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥"**

तो उक्त अवस्था में तत्ततइन्द्रियाँ भगवत्स्वरूप में ही लीन हो जाती हैं, जो अतिशय द्वैत वियोगी हैं वे योगी सम्पूर्ण दृश्यमान जगत से अन्तर्मुख होकर निद्रा सुख में हरिपद का अनुभव करते हैं। निद्रा का सुख संसार के सब सुखों से बड़ा है। वास्तविक तत्वविज्ञान न भी हो फिर भी नींद का सुख सबसे बड़ा है। संसार में सुन्दर-सुन्दर स्त्रियाँ, नाना भाँति का सौगन्ध्य-सौरस्य सम्पन्न सुमधुर पक्वान्न, विभिन्न प्रकार के वस्त्रालंकारादि तो उपलब्ध हों परन्तु यदि नींद न आती हो तो सब व्यर्थ, अनावश्यक, अनाकर्षक प्रतीत होते हैं, अतः नींद सुख बड़ा सुख है। जीव का ब्रह्म से नित्य मिलन ही तो नींद है। तो माने ब्रह्म-सुख के सामने सम्पूर्ण संसार के सुख तुच्छ हैं। जैसे सूत्र में बन्धा हुआ शकुनि पक्षी इधर-उधर उड़ता हुआ अन्तः में परिश्रान्त होकर अपने आधार पर ही आकर विश्राम करता है, उसी तरह परब्रह्म परमात्मा में कर्मरूपी सूत्रों से बन्धा जीव रूपी पक्षी देश-देशान्तरों में

**"प्रज्ञानमात्मा।"**

(प्रज्ञान स्वरूप हूँ।)

—कौषी०

भटकता हुआ जब थक जाता है, जाग्रत-स्वप्न में प्रपंच का अनुभव करते-करते थककर अन्त में उन्ही भगवान् की शरण में जाता है वहीं शान्ति पाता है। जैसे शिशु भटकता है तो भागकर माँ के अंक में छिपता है वहीं शान्ति पाता है, इसी प्रकार जीव भी उसी परब्रह्म में शान्ति प्राप्त करता है। जब जीव ब्रह्म में एकमेक हो जाता है, संसार को भूल जाता है। जैसे कोई व्यक्ति परदेश से आये और उसकी पतिपरायणा प्रियतमा स्त्री घर में उसकी प्रतीक्षा में बैठी हो—वह उसके आलिंगन में सब कुछ भूल जाता है ऐसे ही जीवात्मा, स्वप्रकाश आनन्द सिंधु परब्रह्म में डूब जाता है—उसे तब संसार नहीं दीखता जैसे निद्रा में संसार की विस्मृति होकर नित्य जीवब्रह्म का मिलन होता है—प्रश्न होता है कि जब नित्य जीव-ब्रह्म का मिलन होता है तो फिर उनसे बिछुड़ कर वापिस क्यों लौटता है? वास्तव में निद्रावस्था में जीव अविद्या रूपी आवरण से आवृत्त, ढके हुये, परमात्मा से मिलता है, निरावरण ब्रह्म से नहीं और स्वयं भी जीव संस्कारों से बन्धा हुआ ही उनसे मिलता है। भजन से जब माया का आवरण भंग हो जाता है तो निद्रा से कोटि-कोटि गुना अधिक आनन्द एवं सुख प्राप्त होता है वह निरुपम है। तुलसीदास जी भगवती जगज्जननी जगदम्बा सीता के सौन्दर्य्य की उपमा देने लगे तो कह ही तो दिया कि 'जग अस जुवती कहाँ कमनीया'। 'सरस्वती', भगवती भारती बड़ी सुन्दरी हैं उनके लोकोत्तर सौन्दर्य-महिमा का वर्णन भी अशक्य है परन्तु वे बोलती बहुत हैं; 'पार्वती' जी, अर्द्धनारीश्वर भगवान् शिव की अर्द्धांगिनी हैं आधा शरीर है, कामदेव की स्त्री 'रति' अपने पति के शरीर रहित होने से दुखित है, साक्षात् रमा लक्ष्मी जी के विष, वारुणी बंधु होने में उन्हें वही प्रिय हैं—तो फिर कैसे जगदम्बा जगज्जननी जानकी जी की इनसे उपमा दे दें—

**'गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥**
**विष बारुनी बन्धु प्रिय जेही। कहिय रमासम किमि बैदेही॥**

कितने उत्तम प्रकार से लोकोत्तर महिमा वर्णन है बिना किसी का अपमान किये ही तुलसीदास जी ने उस अलख अलौकिक अनुपम सौन्दर्य्य सुखराशी का वर्णन किया है—'सब उपमा कवि रहे जुठारी, केहि पटतरौं बिदेहकुमारी' तो फिर आगे बोले -

**'जौं छबि सुधा पयोनिधि होई, परम रूप मय कच्छपु सोई।**
**सोभा रजु मंदरु सिंगारु, मथै पानि पंकज निज मारु।**
**एहि विधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुखमूल।**
**तदपि सकोच समेत कवि कहहिं सीय समतूल॥'**

छबि सुधा समुद्र हो, परमदिव्य रूपमय कच्छप हो, शोभा की रस्सी हो, शृंगार रस रूप

---

## "तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय।"

( उसने ईक्षण किया कि मैं बहुत होऊँ, प्रजा रूप में उत्पन्न होऊँ। )

मंदराचल पर्वत हो, कन्दर्प साक्षात् कन्दर्प, काम बिन्दु का उद्गम स्थान, 'काम-सिंधु', अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक परमपिता परमेश्वर का जो 'काम' साक्षात् वह स्वयं मन्थन करे, जब लक्ष्मी जी जो सुन्दरता की मुख मूल है प्राप्त हों तो उस लक्ष्मी के तुल्य 'सीता जी' को उपमा दी जा सकती है। शब्द तत्व की अभिव्यक्ति करने का यही ढंग है अन्य कोई मार्ग ही नहीं है ब्रह्मतत्व को समझने का।

आनन्द का चन्द्र, स्नेह का चन्द्र ही महाभाव रूप जो दिव्य तत्व है वही राधारानी है उनका सब कुछ 'महाभावरूप' है, मोती में जो आभा चमकती है, उसी प्रकार के लावण्यामृत से, तारुण्यामृत से, कारुण्यामृत से स्नान होता है उनका, ......, लज्जा ही वस्त्र है, कुलांगनाओं का स्वभाव ही लज्जायुक्त होता है 'ह्रीमति बाला', नवोढ़ा कुल वधू सखियों में बैठी है, पति पुरुष सभा में बैठा है, सखी पूछती हैं कि 'कौन है पति तुम्हारा' ? 'अयं' कहती है 'ऊँ हूँ' तो फिर 'अयं' नेति, 'अयं ?' —'नेति' अन्त में जब सखी की अंगुली पति पर जाती है तो नवोढ़ा कुल वधू—'मौन' उत्तर देती है कि हां यही 'वह' है। इसी प्रकार परब्रह्म का उपदेश, प्रवचन मौन होकर श्रवण करना चाहिये। 'चित्रं वट तरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा, गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तुच्छिन्नसंशयाः।' ......वट वृक्ष है, शिष्य वृद्ध है, गुरु युवा है, गुरु का मौन व्याख्यान है, शिष्यों के सम्पूर्ण संशय छिन्न हो गये, जैसे उस नवोढ़ा ने पति निर्देशार्थ मौन ही उपयुक्त समझा। ·· सीता जी वन मार्ग पर चली जा रही हैं चित्रकूट में, राम लखन साथ हैं। ग्राम वधूटियाँ पूछती हैं कि तुम्हारे स्वामी कौन हैं, वह लजाकर अपने मुखचन्द्र पर घूंघट डालकर नेत्रों के इंगित करती हैं :—

**'बहुरि बदनु बिधु अंचल ढांकी, पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी।**
**खंजन मंजु तिरीछे नयननि, निज पति कहेउ तिन्हहि सियं सयननि।।'**

वे सब उस 'मूर्तब्रह्म' श्रीराम के दर्शन करके धन्य हो गईं। श्रुति जिसे 'नेति' 'नेति' कहकर निरूपण करती है वह अमूर्त ब्रह्म है, जो-जो कुछ भी दृश्य है वह-वह 'ब्रह्म' नहीं है 'नेति' 'नेति', शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, स्थूल, सूक्ष्म, कार्य, कारण जो कुछ भी यह दृश्य है—'ब्रह्म' नहीं है। तो प्रश्न हुआ कि फिर ब्रह्म क्या है ? इस पर श्रुति मौन। तो जो अन्त में सर्व-साक्षी, सर्वभासक, सर्व प्रकाशक है उसी में चित्त की वृत्ति हो जाती है वही 'परब्रह्म' है। □□

(८-११-१९६३)

## "तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्।"

(ईश्वर जगत को बनाकर उसी में अनुप्रविष्ट होता है।) —श्रुति

# आत्मचिन्तन

शरणागति, आत्मसमर्पण अथवा भगवत्तत्व-विज्ञान यह सब वस्तुएँ ज्ञानात्मक हैं। इतना बड़ा संसार शिर पर खड़ा है इसका मिटना ज्ञान-विचारवादी का ही काम है। बड़े-बड़े पहाड़, समुद्र, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रमण्डल दीखते हैं यह तो एक ही ब्रह्माण्ड में स्थित हैं, ऐसे-ऐसे एक नहीं अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड हैं, भू, भुवः, स्वः, तप, मह इत्यादि ऊर्ध्व लोक, अतल, वितल, सुतल, रसातल, पाताल इत्यादि नीचे के लोकों को मिलाकर एक भुवन की रचना है ऐसे-ऐसे अनन्तानन्त कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड हैं यह सब माया का विस्तार है। जैसे गूलर के वृक्ष में अपरिगणित फल होते हैं ऐसे ही माया रूपी गूलर के फल ही यह सब ब्रह्माण्ड है और जैसे गूलर के भीतर कीड़े होते हैं ऐसे एक-एक ब्रह्माण्ड के भीतर जीव हैं। इस प्रकार अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों की स्थिति है। यह विश्वप्रपंच समष्टि और व्यष्टि की दृष्टि में भी प्राण, मन, बुद्धि, अहं के आवरण से आवृत आत्मा है। माया के उक्त आवरण को तोड़कर निरावरण परब्रह्म का अनुभव करना बड़ी ऊँची वस्तु है। इसके लिए तप, त्याग, विचार करना पड़ता है तो भी बड़ा कठिन है दुर्लभ है उसका साक्षात्कार। तो भी निश्चित रूप से अन्त में यह है विचार की वस्तु। जैसे कोई बड़ा पत्थर सौ आदमियों से भी नहीं उठता परन्तु बुद्धि से निर्मित मशीन द्वारा सरलता से उठा दिया जाता है इसी प्रकार जो संसार, पहाड़ के समान कठिन दीखता है वही विचार करने पर अन्तर्मुख होने पर, शान्त होने पर रह ही नहीं जाता। भव-समुद्र, आनन्द-समुद्र में परिकल्पित है, भ्रान्ति से आप हम इसे भव-समुद्र मान रहे हैं जैसे कोई माला में सर्प का भ्रम होने से भ्रमवश उसे सर्प ही मान लेता है परन्तु वास्तविकता का ज्ञान होने पर वह सर्प भ्रम माला में लीन हो जाता है। इस प्रकार यह भव-समुद्र आनन्द-समुद्र से उत्पन्न है, उसी में स्थित है अन्त में उसी में प्रविलीन हो जाता है अतः सब कुछ आनन्द-समुद्र ही है। इस प्रकार जो वस्तु अत्यन्त कठोर कठिन मालूम होता है वही विचारोपरांत आसान हो जाता है।

सूर्य की रश्मियों में जल रहता है, वही बादल बनता है, फिर धरती पर गिरता है, जो जल रश्मियों में रहता है उसकी अपेक्षा यह जल स्थूल है; जल की तुलना में बादल सूक्ष्म, बादल की अपेक्षा सूर्य-रश्मि-स्थित जल सूक्ष्म है। इस प्रकार जो जल कभी सूक्ष्म-रश्मियों में विचरता है वही स्थूल होकर बादल, वर्षा-जल बनता है फिर और स्थूल बना तो बर्फ बन जाता है और स्थूल कठोर बनता है। वही यदि हजारों वर्षों दबा रहे तो नीलमणि का रूप ग्रहण कर लेता है और भी स्थूल-कठोर हो जाता है। कितना वैषम्य हो जाता है कहाँ मणि या बर्फ की कठोरता और कहाँ रश्मि के जल की स्थिति

---

**"यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह।"** —कठोपनिषद

**(जो परब्रह्म यहाँ है, वही वहाँ (परलोक में) भी है, जो वहाँ है वही यहाँ (इस लोक में) भी है।)**

कितना अन्तर भासित होता है । यह सब क्रिया के द्वारा व्यापार के द्वारा रचना होती है । आकाश से
तेज फिर जल फिर ईश्वरीय शक्ति इत्यादि के आधार पर संसार बन जाता है । इन्हें समझने के लिये
यूं समझिये कि जैसे आतान वितानात्मक तन्तु ही वस्त्र कहलाता है । पर व्यवहार में मात्र तागा कहा
जायेगा तो कोई वस्त्र नहीं देगा यद्यपि वस्त्र नामक वस्तु कुछ है ही नहीं सब कुछ तागा ही तो है वही
ताना बना रूप व्यवहार के कारण वस्त्र कहलाया । तो जो होय वह तो प्रतीत न हो, जो प्रतीत हो
वास्तव में वह हो ही नहीं जैसे रज्जु में सर्प एवं सीपी में चाँदी की भ्रांति हो जाय तो बिना ज्ञान के
भ्रांति निवृत्ति हुये वह प्रतीति मिटती नहीं । इसी प्रकार अनन्त ब्रह्म से यह जगत न होता हुआ भी
प्रतीत होता है और अधिष्ठान जगत में ब्रह्म नहीं प्रतीत होता जबकि सब कुछ वही है ।

**'जेहि जागे जग जान हेराई जागे यथा स्वप्न भ्रम जाई ।'**

**'रजत सीप मह भास जिमि यथा भानु कर बारि ।'**

हजार प्रयत्न करने पर भी इन प्रतीतियों का अपलाप न हो तो भी ज्ञान से इनकी भ्रांति दूर होती है । यह विचारणीय है कि रज्जु में सर्प का भ्रम हजार गोदान, हजार ब्राह्मण भोजन से भी दूर नहीं होगा । वह तो तभी दूर होगा जब दीपक लाने का बोध हो प्रकाश आये वहां तब वह सर्प की भ्रांति तत्काल मिट जाती है । तो भगवान की शरणागति, भगवान की सत्ता का निर्णय बहुत बड़ी बात है । वेन में और शिशुपाल में यही अन्तर था । दोनों यद्यपि नास्तिक थे, प्रभु विरोधी थे, परन्तु शिशुपाल को प्रतीति हो गई, वेन को नहीं हुई । शिशुपाल की बुद्धि में, 'भगवान है' यह बुद्धि थी, 'वह दुष्ट है', 'खराब है', इसे समाप्त करा दिया जाये ऐसी बुद्धि थी । परन्तु वेन की दृष्टि में भगवान है ही नहीं । आस्तिक का किसी से बैर नहीं । वह जानता है कि सब 'अमृतस्यपुत्रा' हैं, सगे भाई हैं, असल भाई हुये परस्पर । और आज का कामरेड, लेनिन का दायां हाथ होने पर भी विरोध होते हीं ट्राटस्की का शिर हथौड़ से तोड़ दिया गया, तो वह बाहरी सम्बन्ध है यह सम्बन्ध सीमित है । पार्टी का, कोई जाति का, सम्प्रदाय का, देश का सम्बन्ध — यह सम्बन्ध एक दायरे में होते हैं, परन्तु वह जो आत्मा का सम्बन्ध होता है वहाँ दायरे का सम्बन्ध नहीं । वहाँ उस सम्बन्ध के सामने तो हिन्दू, मुस-लिम, आस्तिक-नास्तिक तथा मनुष्य मात्र के ही नहीं, शूकर, कूकर, कीट-पतंगादि सभी प्राणी मात्र के भेद खत्म हो जाते हैं । ''सीयराममय सब जग जानी, करहुं प्रणाम जोरि जुग पानी ।' तथा 'निज-प्रभुमय देखहिं जगत का सन करहिं विरोध ।' वास्तव में यही सिद्धांत सत्य है । वह ब्रह्म अमृत है उसके पुत्र उससे उत्पन्न सम्पूर्ण प्राणी हैं पर वह न स्त्री है, न पुरुष, न पक्षी, न पशु, न कीट, न पतंग

---

**"अन्यदेवतद्विदितादथो अविदितादधि ।"** —केनोपनिषद

(वह ब्रह्म विदित (ज्ञात वस्तुओं) से भिन्न है और अविदित (अज्ञात) से भी ऊपर है ।)

वह तो जैसा जैसा देह धारण करता है वैसा ही बन जाता है, भिन्न-भिन्न रूपों से भिन्नता की प्रतीति होती है। आस्तिक इसी सिद्धांत के अनुसार किसी का भी अहित सम्पादन नहीं करता वह तो सब का कल्याण चाहता है, नास्तिक का भी कल्याण चाहता है। श्री उदयनाचार्य जी बड़े नैयायिक थे वह भी अपनी न्याय कुसुमांजलि में कहते हैं कि 'हे नाथ ! इनका भी कल्याण हो। हे सर्वेश्वर ! हे अकारणकरुण आप इन नास्तिकों का भी कल्याण करना। यद्यपि हमने श्रुति रूपी निर्मल जल से इनके मानस के दुस्तर्क रूपी कलंक पंक से मलिन मन को धोने की चेष्टा की, श्रुतिप्रमाण, युक्ति-प्रमाण प्रस्थापित किया, तो भी इनके हृदय में आप पर विश्वास ही नहीं होता है, प्रभु इनका भी कल्याण करो।' तो सबसे पहले प्रभु के अस्तित्व को स्वीकारो। छोटे-छोटे सुई छिद्रों, घटाकाशों इत्यादि का उद्गम स्थान एक महाकाश है; छोटे-छोटे मिट्टी के पाषाण, ढेले, लोष्ट का उद्गम स्थान अखण्ड भूमण्डल है; बिन्दु, फेन, बुद-बुद जलों का उद्गम स्थान महान जल ही है; वैसे ही हम लोग छोटे-छोटे जीव हैं उनका उद्गम स्थान, उनके अस्तित्व का अधिष्ठान, वह महान सत्ता है, जो अपरिमित ज्ञान, स्वातन्त्र्य एवं अखण्ड अनन्त आनन्द रूप है। बिना आधार के कोई वस्तु नहीं, कोई तखते पर बैठा है तो उस तखते का भी आधार पृथ्वी है ही। सूर्य के आधार पर पृथ्वी, मंगल, चन्द्रमा, बुध, वृहस्पति इत्यादि की स्थिति है। इस पर प्रश्न होता है कि सूर्य किसके आधार पर तो इस पर कहा गया कि वह इन नक्षत्रों के आधार पर परन्तु इससे तो अन्योन्याश्रय दोष हो गया। देवदत्त से यज्ञदत्त, यज्ञदत्त से देवदत्त तो नहीं बनेगा। अन्योन्याश्रय में उत्पत्ति नहीं बनती, ज्ञान नहीं हो सकता। मकान किसका जिसकी बहू बहू किसकी जिसका मकान तो नहीं बनता। ज्ञाप्ति, उत्पत्ति नहीं, पानी के आधार पर लोटा कि लोटा के आधार पर पानी, मकान की डाट के आधार पर दीवार कि दीवार के आधार पर डाट-परन्तु विचारो इन सबका का आधार है पृथ्वी। पृथ्वी का आधार है जल, जल का तेज, तेज का आकाश और आकाश का आधार 'अहं' ठहरता है। स्पष्ट है कि स्थूल अपने से सूक्ष्म के आधार पर टिका है, साथ ही साथ सूक्ष्म व्यापक होता है, स्थूल व्याप्य होता है जैसे दही ऊपर का कठोर होता है नीचे का ढीला, वह भी बना दूध से। ऊपर से बर्फ जमा रहता है नीचे पानी बहता है बर्फ के। जैसे पानी सूक्ष्म बर्फ स्थूल है तो भी उसी सूक्ष्म के आधार पर टिका रहता है। इसी प्रकार यह अखण्ड भूमण्डल, सूक्ष्म पृथ्वी के आधार पर स्थित है जहाँ तक गन्ध जाती है वहाँ तक पृथ्वी है, इस गन्धवती पृथ्वी का आधार इससे सूक्ष्म जल, स्थूल जल का आधार उससे सूक्ष्म तेज, तेज के रश्मियों में उष्मा बढ़ने पर पानी सामने आता है, वायु चलता है उष्मा के न्यूनाधिक्य से ही हलचल होती है वायु चलने लगता है, तो वायु से तेज सूक्ष्म है जोकि उसका आधार है। तेज का आधार आकाश, आकाश का अहंतत्व ठहरता है।

सोने पर नींद से जागो। तो जो सोना जगना जानता है वह ब्रह्म को जान लेता है। ढंग से

---

**"एष त आत्मान्तर्याम्यमृतः।"**

(वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है।) —बृह०

सोना जागना चाहिये। थककर सो जाना तो कुत्तों को भी आता है। आप को सोने, जागने के बीच की स्थिति जाननी होगी। जैसे यदि मणिमाला के सूत्र को यदि देखना हो तो दो मणियों के बीच में देखो। तो जागृत खत्म, निद्रा खत्म नहीं हुई अभी उस बीच की अवस्था को देखो तो कुछ दीखे। जैसे अग्नि की लकड़ी घुमाने से एक चक्कर सा प्रतीत होता है अग्नि का, वेग के कारण अग्नि चक्राकार घूमती लगती है, अलात चक्र बन जाता है इसी प्रकार अधिक वेग के कारण बिजली के पंखों की फलकों की चक्रकारिता से फलकों का भेद प्रकट नहीं होता। इसी प्रकार जागने सोने का वेग बढ़ गया है अतः बीच ज्ञात होता ही नहीं। घट-ज्ञान, गन्ध-ज्ञान, रूप-ज्ञान इत्यादि के बीच की स्थिति का ज्ञान करना है। पापड़ खाते समय शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध, स्वाद इन पाँचों का अनुभव होता है। एकसाथ इन पाँचों का ज्ञान होता है; तो मन जिस समय जिस इन्द्रिय से जुड़ेगा अर्थात आँख, नाक, कान, रसना इत्यादि से तब ही उस उस का ज्ञान होगा यदि मन व्यापक होता तो एक ही समय में सबका ज्ञान होता। नैयायिकों का शास्त्रार्थ है कि एक समय में पाँच, तीन, दो ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, जिससे संशलिष्ट होता है उसी का ज्ञान होता है अतः मन व्यापक नहीं अपितु अणु प्रमाण है। तो फिर पापड़ खाने के साथ पाँचों का ज्ञान कैसे सम्भव? इस पर कहना यह है कि जैसे सौ कमल के पत्तों को एकत्र एक दूसरे के ऊपर रखकर तलवार मारो तो एक ही हाथ में एक ही समय में सब पत्ता झट से कट जाते हैं क्षण मात्र में और यद्यपि उनका कटना एक समय में ही मालूम पड़ता है परन्तु पत्ते क्रम से कटते हैं पहले सबसे ऊपर का अनन्तर उससे नीचे का—परन्तु एक दूसरे के कटने का मध्यांतर काल इतना सूक्ष्म काल है कि इसका परिज्ञान नहीं हो पाता। इसी प्रकार पंखे की गति कम करो तो फलकों के मध्य का भेद स्पष्ट हो जाता है। गति ज्यों-ज्यों मन्द होती है भेद प्रगट होने लगता है। 'अलातचक्र' की गति कम होते ही उसका भेद भी प्रगट हो जाता है। इसी प्रकार मन की गति है जैसे-जैसे यह मन काबू में आवेगा वैसे वैसे ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध के बीच की गति भी ज्ञात होगी। इस मन की गति को मन्द करने के लिये प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि आवश्यक है, उसमें मन की स्वाधीनता छिन्न जाती है। जैसे दौड़ना, तेज दौड़ना आपकी इच्छा परन्तु अत्यन्त वेग बढ़ जाने पर एकदम यकायक रुक जायें या न दौड़ें यह अपने वश की बात नहीं, मोटर का वेग बढ़ाना वश की बात परन्तु वेग बढ़ जाने पर एकदम रोकना वश की बात नहीं इसी प्रकार मन की स्वेच्छाचारिता, स्वाधीनता पर बुद्धि द्वारा युक्ति द्वारा ध्यान, धारणा, समाधि इत्यादि के द्वारा अंकुश लगाया जा सकता है। हमने मन से संकल्प करना शुरू किया, मन हमारा नौकर है परन्तु यह हमारे ही शिर पर चढ़ बैठा है जैसे किसी ने एक प्रेत सिद्ध किया प्रेत प्रगट हुआ साधक ने पूछा 'क्या चाहते हो'। प्रेत बोला 'काम करना चाहता हूँ जैसा आप कहेंगे मैं काम करूँगा- परन्तु जब काम नहीं मिलेगा तुमको खा जाऊँगा'। अब आप ही सोचो कि

**"स यश्चायं पुरुषोयश्चासावादित्ये स एकः।"**

(वह जो यह पुरुष में है और वह जो यह आदित्य में है, एक ही है।) —तैत्तिरीय०
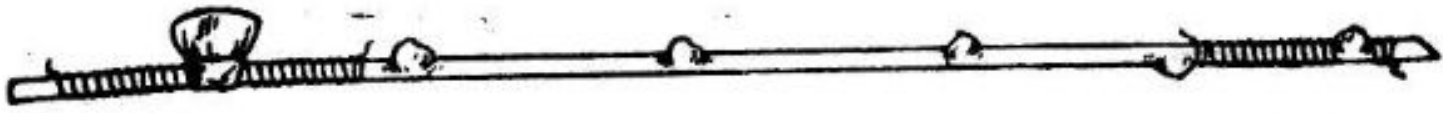
चौबीस घण्टे प्रति क्षण काम कहाँ से लावें। महात्मा ने विचार किया कि अब तो इसी प्रेत के द्वारा मरण निश्चित है; परन्तु उन्होंने युक्ति सोची एक बांस गाड़ दिया भूमि में और उस प्रेत से कहा कि इस पर चढ़ो और उतरो, फिर चढ़ो और फिर उतरो - तब जाकर उससे जान बची। इसी प्रकार इस मन को जो कि गुलाम होते हुए भी मालिक बन बैठा है काम में लगाओ तब तो ठीक रहेगा अन्यथा शिर पर चढ़ बैठेगा अतः इस प्रेतनाथ रूपी मन को राम नाम दे दो, कि इस पर ही चढ़ो उतरो तब जाकर यह नियन्त्रण में आयेगा। यद्यपि हम सब इन्द्रियों को नोकर मान लेते हैं समझ लेते हैं परन्तु व्यवहारतः हम सब ही इनके दास बन गये हैं। वस्तु स्थिति यह है कि जब यह मन, इन्द्रियाँ दास हो जायेंगी तब ही यह समझ में आयेगा कि हम 'आत्मा' हैं स्वामी हैं, मालिक हैं। परंतु जब तक मन की दासता बनी है तब तक नित्य इससे छूटने का उपाय, जप, तप, पाठ, प्राणायाम, समाधि इत्यादि सत्प्रयत्नों में लगे रहने में ही कल्याण है।

तो जिस समय आप सोकर जागने लगे, निद्रा भंग होते ही एक अज्ञान का आवरण सा बाकी है। जैसे पढ़ते समय जो निद्रा आने लगती है उस समय अक्षर आवृत्त आच्छादित हो जाते हैं तदुपरांत एकदम शून्य हो जाते हैं तब कहा जाता है कि नींद आ रही है। जब तक जागृत अवस्था में ठीक से हैं तब तक मन-इन्द्रियादि से काम ले सकते हैं, परंतु निद्रा के आवरण आने पर सब पर पर्दा पड़ जाता हैं; जागरण पर तभी तो कहा जाता है कि 'भई, मन, बुद्धि, चित्त पर निद्रा ने आवरण डाल दिया, नींद ने घेर लिया'—तो एक समय तक जगते-जगते पढ़-समझ रहे हैं आगे चलकर गति स्तब्ध हो गई, सुनना, समझना बन्द हो गया परन्तु अभी निद्रा आई नहीं है उसने आवरण मात्र डाला ही है पूर्ण रूपेण ढका नहीं, हाँ ! पढ़ने लिखने आदि के व्यापार बन्द हो गये हैं, तब ही इस पर विचार करो। उधर निद्रा भंग होने पर भी अभी अभी आँखें खुली हैं। जगत की प्रतीति पूर्णरूपेण अभी नहीं हुई है, अज्ञान का आवरण पर्दा खत्म हो रहा है। तो इसी सोने जागने के मध्य के काल की स्थिति को जानना होगा। एक तो होता है शुद्ध-मान, किसका भान-स्फुरण होता है उसी का जो निद्रा का भासक था बोध था – जैसे 'मैं सोया' परन्तु मुझे कुछ पता नहीं 'मैंने कुछ नहीं जाना' तो उसके जानने की चेष्टा करनी चाहिये कारण प्रकाश तो वहीं रहता ही है जो सर्वभासक है दृष्टा है। फिर सविकल्प ज्ञान की प्रतीति होती है उसे महत्तत्व कहते हैं। जैसे बादल के टुकड़े में अनन्त बादल है, सूर्य की एक रश्मि में अनन्तरश्मिपुञ्ज का ज्ञान। निद्रा के 'सविकल्प-ज्ञान' से 'निर्विकल्प-ज्ञान' होगा, फिर 'अहंकार' का स्फुरण होगा, फिर 'इदं' आकाश की स्थिति होती है। तो पहले सामान्य-ज्ञान, फिर सविकल्प, फिर अहं फिर इदं आकाश। अहं का आधार ज्ञान है अव्याकृत निद्रा और उस अव्याकृत- निद्रा का आधार है 'अव्याकृतब्रह्म'।

---

**वेद शास्त्र गुरूणां तु स्वयमानन्द लक्षणम्।**

(वेदों, शास्त्रों और गुरुजनों के वचनों से स्वयं ही हृदय में आनन्दस्वरूप ब्रह्म का अनुभव होने लगता है।)

संसार में एक पौधे का, मकान का, भूमि का, नहरों का भी कोई न कोई मालिक है तो फिर अखण्ड भूमण्डल बिना मालिक के कैसे हो सकता है। रेगिस्तान, कटीले, कंकरीले स्थान दलदल भरे जंगल तक का स्वामी होता है तो क्या फिर सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रमण्डलादि बिना स्वामी के ही, यूं ही अनियमित घूम रहे हैं? नहीं! इनमें नियमबद्धता है इनका भी नियामक है। बिना नियामक के नियम कैसे चल सकता है। अमुक समय में चन्द्रोदय, सूर्योदय होगा, अस्त होगा, ज्वारभाटा होगा। नवमी को कहाँ क्या होगा, अमावस्या को, पूर्णमासी को क्या होगा? तो यह निश्चित एवं नियमित रूप से नक्षत्र मण्डल का गतिक्रम चल रहा है, अपरिगणित खगोल के तारे चलते रहते हैं। यह सब टकरा कर चकनाचूर क्यों नहीं हो जाते? अवश्य इनके नियम बने हैं और नियम, बिना नियन्ता, नियामक के होता ही नहीं--तो मानना पड़ेगा कि अवश्य ही कोई इन सबका नियामक है। इस प्रकार अनेक युक्तियों द्वारा भगवान की सत्ता का निर्णय हो जाता है।

**असन्नेव स भवति असद ब्रह्मेति इति वेद चेत्।**
**अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद सन्तमेनं ततो विदुरिति॥**

भगवान नहीं है ऐसा निर्णय करने वाले का नाश हो जाता है। बताओ है कोई अपने पुत्र, पुत्रादि का नाम रावण, कंस, सूर्पनखा इत्यादि रखने वाला? 'असत ब्रह्मं व चेद वेद' है परात्परप्रभु जो यह निर्णय करता है संसार उसे सन्त कहने लगता है। तो भले ही सूर्य ठण्डा पड़ जाय, चन्द्रमा गर्म हो जाय, उस अखण्ड सत्ता में आंच नहीं आती वही भगवान है। ईश्वर विश्वासी आस्तिक नास्तिक का भी कल्याण चाहता है शिशु पाल की तरह। परन्तु वेन नहीं मानता था ईश्वर की सत्ता को फिर भी उसका भी कल्याण हुआ। तो नाना प्रकार की श्रुति रूपी जल से नास्तिक के मानस को धोने का प्रयास करते हुए भी जिनको विश्वास ईश्वर के प्रति नहीं होता उनका हृदय वज्र का टुकड़ा है, परन्तु हे प्रभु! आप इन पर भी दया करना—अरे! कैसे दया करें यह तो सम्बन्ध ही नहीं जोड़ता। नास्तिक से जब आस्तिक का शास्त्रार्थ होता है—तो वह तर्क देता है कि जैसे मिट्टी का घड़ा चेतन के प्रयत्न से बनता है इसी प्रकार यह अनन्त ब्रह्माण्ड भी ज्ञानवान चेतन का ही बनाया हुआ है। 'जानाति-इच्छति-अथ करोति' अतः यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड किसी चैतन्य क्रियावान द्वारा ही चमत्कृत है। सब उसी प्रभु का चमत्कार है। नास्तिक कहता है इन पौधों को किसने बनाया? यह तो अपने आप बन जाते हैं। परन्तु दृष्टांत वह होता है जो दोनों को मान्य हो। आस्तिक का घड़ा ज्ञानवान से बना इसे दोनों को मानना होगा। पौधे अपने आप बने इसे आस्तिक नहीं मानता। नजीर अलग—ईशू अलग। जिनका कर्ता हम नहीं देखते -- यह तो पक्ष है यह स्वयं दृष्टांत नहीं बन सकता -अरे! इसी पर तो शास्त्रार्थ है। यह पक्ष कोटि में आता है कि पेड़, पौधे अपने आप बनते हैं। इस प्रकार नास्तिकता का सिद्धांत

**तत्त्वस्य प्राणोऽहमस्मि पृथिव्याः प्राणोऽहमस्मि।**
(मैं तत्त्व का प्राण हूँ, पृथ्वी का प्राण हूँ।)

केवल वही मानता है। जबकि आस्तिक के दृष्टांत को दोनो पक्ष स्वीकारते हैं। तो इस प्रकार भी ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करना पड़ता है।

तो मैं जो देह, इन्द्रिय, मन का दृष्टा हूँ यह तो व्यष्टि ब्रह्म और इन अनन्तानन्त देह, इन्द्रिय, विश्व प्रपंच का दृष्टा सृष्टा है वही समष्टि अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक पूर्णतम परब्रह्म है। आस्तिक भी नास्तिक भी दोनों रात रात भर जागकर जिसका चिन्तन करते हैं एक खण्डन को दूसरा मण्डन करने के प्रयोजन से। एक खण्डनीय विधेया दूसरा मण्डनीय विधेया तो दोनों ही तो उसका चिन्तन करते हैं। अरे ? कोई अनुकूल करे या प्रतिकूल भजता तो है ही। कोई शिशुपाल, कंस की भांति खंडन करते हैं तो समय पर आप ने प्रभु उनका भी कल्याण ही किया। तो आस्तिक कहता है कि प्रभु आप इन नास्तिकों का भी यथाकाल कल्याण ही करना चूंकि बाकी बातों में विरोध ही नहीं। सभी समानता, स्वतन्त्रता, भ्रातृता इत्यादि का आधार आस्तिक के आत्मवाद में ही है।

शरणागति अन्ततोगत्वा एक विचार है। वह अनन्तकोटि ब्रह्मांड का नायक है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रमंडलादि का नियमन संचालन जो करता है, जिसके नियमन संचालन से ऋतुयें चलती हैं, छोटे छोटे कीट-पंतगों में, पत्तों में जो भी हलचल है, जायते म्रियते ···· का क्रम है, नियम बद्धता है वह सब कुछ उसी से है, उसी सर्वशक्तिमान से नियन्त्रित संचालित हैं। फिर चाहे आप उसे सगुण कहो या निर्गुण मानो। फिर अजर अमर स्वप्रकाश आत्मा का निर्णय करो। हम केवल हाड़ मांस के पुतले नहीं हैं। हाथ कटगया तो आत्मा नहीं मरा। यह केवल माता-पिता के रज-वार्य से बना आकार ही नहीं है। हम नाक, कान, आँख इत्यादि भी हम नहीं हैं। कारण यह सब हमारी हैं, हम नहीं। हम और हमारी वस्तुएँ हम नहीं एक नहीं हो सकते अपितु दोनों पृथक-पृथक हैं। एक नहीं। हमारी मोटर, हमारा पुत्र हमारी आँख यह सब अभिमानवश होता है। हमारी आँखें, हमारी रसना, हमारा मन, हम नहीं। चित, हमारी बुद्धि, हमारा अहंकार हम नहीं—यह सब ज्ञेय हैं, भास्य हैं। हम इनके ज्ञाता हैं भासक हैं देहादि से अलग आत्मा। यह शरीर भले ही मर जाय आत्मा नहीं मरता। महाराजा दिलीप कहते हैं कि गोरक्षा के लिये एक शरीर क्या एक सहस्र भी देना पड़े तो क्या ? सरदार भगत सिंह का मरने से पहले वजन बढ़ गया—फांसी का मौत का शरीर का शोक, मोह उन्हें नहीं सताया। आत्मा, अजर, अमर है दूसरा शरीर धारण करके भी बम फेंकेंगे, राष्ट्र की रक्षा करेंगे। यह उदात्त भावनाएँ शरीरवादियों की नहीं आत्मवादियों की होती हैं जो इन भावनाओं से ओत प्रोत होते हैं, वह निश्चिन्त होते हैं। महाभारत के युद्ध में भगवान ने अर्जुन को आदेश उपदेश दिया कि हे अर्जुन यह आत्मा अजर, अमर है शस्त्र इसे काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती, वायु सुखा नहीं सकता, जल गला नहीं सकता,

---

**अपां च प्राणोऽहमस्मि तेजश्चप्राणोऽहमस्मि।**

(मैं जल का प्राण हूँ, तेज का प्राण हूँ।)

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

तो सारांश यह निकला कि पहले प्रभु की सत्ता का निश्चितरूपेण अटल भाव से निर्णय करके उनके अस्तित्व के प्रति पूर्ण निष्ठावान बनें। फिर अपनी सत्ता का निर्णय करें, तदुपरांत दोनों को जोड़ लें अपने-अपने सिद्धांतानुसार जीव और आत्मा का सम्बन्ध जोड़ें। फिर उसमें अपने आप को समर्पित कर दो। 'त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये। 'तरंग कहे कि कहाँ का जल, प्रतिविम्ब कहे कि कैसा विम्ब ? जो कुछ है मैं ही हूँ – आप ऐसा अभिमान न करो अपितु बारम्बार उनसे प्रार्थना करो कि 'मा मा ब्रह्म निराकरो' 'ब्रह्म ! हमारा निराकरण न करो', 'माहं ब्रह्म निराकुर्याम्' 'हम आप का खण्डन न करें प्रभु।' हम पागल अपने हाथ से ही शिर न काटें, ऐसी कृपा करो। जीव अपने प्रभु का स्वयं खण्डन करता है ।'नाथ जीव तव माया मोहा' हे प्रभु !उसी का निस्तार होगा जिस पर आप की कृपा हो जायेगी आप का अनुग्रह होगा। उसी का उद्धार होगा ।ऊधो जी कहते हैं कि प्रभु ! हम आज आप की शरण आये हैं वह भी आप का अनुग्रह ही है। समुद्र पार करने के लिये यदि मगर को पकड़ लिया तो क्या पार करोगे, फंसा संसार के घड़ियालों को पकड़ते हैं आज फिर सोचो कि क्या उद्धार हो सकेगा ? तो प्रभु की सत्ता का निर्णय करो, अपना निर्णय करो कि तुम कौन हो ? फिर सब कुछ उन्हीं को समर्पित करते चलो। संसार के सब काम करते चलो, जैसे प्रभु चलावे चलते रहो। बस एक बार निश्चितरूप से विश्वासपूर्वक निर्णय कर लो, प्रारब्धवशात भोग भोगते रहना ही है। 'भले ही नर्कों में निवास करना पड़े तो भी आप विचार न करें, श्रद्धा को न डिगने दें । बस मनोमिलिन्द प्रभु के चरणारविन्द मकरन्द का पान करता रहे, फिर चाहे जैसे भी रहना पड़े – तो एक क्षणमात्र में ही कल्याण हो सकता है। फल तोड़ने में भी देरी हो सकती है परन्तु फिर कल्याण में विलम्ब कहाँ ? हाँ! आप ईमानदारी, धर्मानुष्ठान, सन्ध्यावन्दन, सूर्योपासना, स्नान, ध्यान, प्राणायाम, मार्जन इत्यदि अपने अपने इष्ट देव का पूजन निष्ठापूर्वक करते चलो। चोर बाजारी से बचो, भ्रष्टाचार से दूर रहो, होटलों में खाना बन्द कर दो, मांस-मदिरा तामसिक पदार्थों के सेवन से एकदम दूर रहो, सिनेमादि को छोड़ दो, आज मन, बुद्धि खराब होते जा रहे हैं, विकृत हो गये हैं। बुद्धि, में इन्द्रियों में गड़बड़ी हो गई है इसी कारण जो कुछ सत्संग, पूजन भजन इत्यादि करते हो उसके उपरान्त भी उनका प्रभाव आप पर नहीं दीखता है, इनका फल पूर्णरूपेण नहीं मिलपा रहा है। तो इन्हें ठीक करो, धीरे धीरे एक एक बात से बचने की चेष्टा करो, उधर उपरोक्त सत्कर्मों की ओर शनैः शनैः उन्मुख होते जाओ। साथ ही सांसारिक व्यापारादि का संचालन भी सुचारुरूप से, ईमानदारी से करते

**वायोश्च प्राणोऽहमस्मि आकाशस्य प्राणोऽहमस्मि ।**

(वायु का प्राण हूँ, आकाश का प्राण हूँ ।)
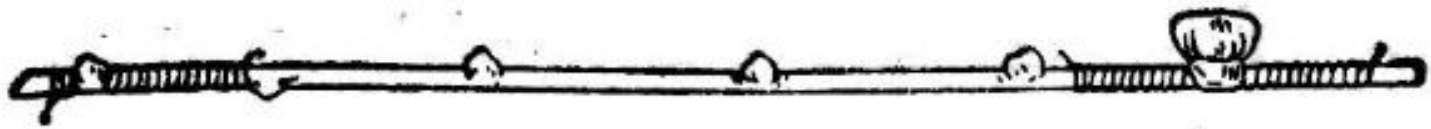
रहो। अपने माता-पिता का. पत्नी का, बाल गोपालों का ढंग से लालन-पालन करो इस प्रकार से जो शुद्ध आचरण द्वारा इस संसार में कालयापन करेगा उसका यह लोक भी सध जायेगा और परलोक भी बन जायेगा उसके कल्याण में किंचिन्मात्र भी सन्देह को स्थान नहीं है। इसी प्रकार के व्यक्तियों से समाज का, राष्ट्र का एवं संसार का हित सम्पादन हो सकता है; अतएव आज अपने अब तक के जीवन की अपने कार्यों की समीक्षा करो, 'आत्मचिंतन' में लग जाओ करुण होकर प्रभु को पुकारो नित्य सपरिवार उनकी शरण में जाओ 'शरणागति' की अद्भुत महिमा है इस प्रकार के सच्चरित्र, सत्यनिष्ठ, धर्मशील, आत्मानात्मविवेकशील व्यक्ति ही राष्ट्र का, संसार का कल्याण करने में समर्थ हो सकते हैं।

□ □

—(२८—६—१९६५)

[ अनन्त विश्व का नियामक और स्वामी अनन्त आनन्द-सिन्धु परमानन्द कन्द भगवान् ही है। जीव भगवान का अंश है। फेन, तरंग, बुदबुद के भीतर बाहर जैसे जल ही ओत-प्रोत है ऐसे ही स्वांशभूत जीवों के बाहर भीतर चारों ओर भगवान ही व्याप्त है। "अमृतस्यपुत्राः" आस्तिक, नास्तिक, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि समस्त सम्प्रदायों, समस्त वर्णों, समस्त आश्रमों के सभी जीव अमृत भगवान के पुत्र हैं। आप लोग कीट पतंग के पुत्र नहीं हैं। सबके सब अमृत के ही पुत्र हैं। भेड़ के पुत्र नहीं हैं, किंतु सिंह के पुत्र हैं। सिंह का पुत्र सिंह ही होता है। अमृत का पुत्र अमृत ही होता है। अपने को हीन मत समझो। ]

●

"एतस्यैवाक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः।"

—बृहदारण्यक

# राजनीति और धर्म का स्थान

यहाँ के आयोजकों ने विषय रखा है कि 'जीवन का दृष्टिकोण क्या है ?' 'कैसे जिये हम लोग ?' 'जीने का ढंग क्या है ?' आमतौर पर मनुष्यों का यह दृष्टिकोण है कि दुनिया में सभी लोग प्रायः चेष्टावान होते हैं। पशु-पक्षी, मनुष्य दिन-रात इसी काम में रत रहते हैं। प्रातः काल पक्षी अपने घोसलों से निकल कर खाने-पीने के प्रबन्ध में लग जाते हैं, चुग-चुग कर दाना लाते हैं। पशु भी घास चरते हैं। शिकारी जानवर सिंह आदि अपने काम में लगे रहते हैं। बस भोजन का प्रबन्ध करना, पानी ढूंढ़ लेना, वर्षा में शीत से, गर्मी से बचने का इलाज निकालना बिल या घोंसला बनाना यह उनका स्वाभाविक कार्य, चेष्टा होती है। भूख की प्रेरणा स्वाभाविक होती है, प्यास व शीत की प्रेरणा भी अपने आप होती है। इसी प्रकार पशु, पक्षी सभी में सन्तानोत्पादन की प्रेरणा भी स्वाभाविकी ही होती है। आहार, निद्रा, भय, मैथुन यह सब में समान रूप से होती है। सभी प्राणियों का यही स्वाभाविक काम है। मनुष्य की भी पहले यही प्रवृत्ति है। मनुष्य कुछ बुद्धिमान है अतः कुछ ज्यादा बटोरने लग गया। अन्य प्राणियों ने एक दिन का संग्रह किया। चीटीं अवश्य संग्रह रखती है। अर्थ-शास्त्र का गुर भी यही है। अब कुछ अधिक धनसंग्रह होने लगा। मधुमक्खी ने रस संग्रह किया। चींटी में भी सग्रह को प्रवृत्ति होती है। इन्हें देखकर मनुष्यों में भी संग्रह की प्रवृत्ति आई कि घी, दूध, अन्न आदि का संग्रह करो। इनके खराब होने पर मुद्रा प्रणाली निकाली। सोना, हीरा बटोरने की प्रवृत्ति अपनायी। हुण्डी का सिद्धान्त निकाला। अधिक से अधिक संग्रह कर लो जिससे जीवन पर्यन्त सुखोपभोग कर सकें तथा साथ ही पुत्र-पौत्रों के लिये भी संग्रह कर लें जिससे दरिद्रता का कभी दर्शन न हो। पहले अन्न, घी, दूध, फिर सोना, धन, हाथी, घोड़ा आदि को रखता रहा, स्थिति यह आई कि बटोरा किसी ने और खाया किसी ने। बटोरा मक्खी ने—धुवाँ किया और उसका संगृहीत शहद खा लिया मनुष्य ने। इसी प्रकार जब मनुष्य समाज में अव्यवस्था आई तो विचार किया गया कि इसके लिये शासन की व्यवस्था होनी चाहिये। दण्ड की व्यवस्था हो। किसी की जायज, वैध सम्पत्ति को छीनने वाला अपराधी हो। उसे अपराध के लिये दण्ड हो। शिष्ट परिपालन और पुण्यनिग्रह दोनों हों। दूसरे की गाढ़े पसीने की कमाई कोई छीने नहीं इसके लिये राजा की आवश्यकता पड़ी—दीर्घकाय (मानवदेव) का जन्म हुआ। सारी जनता ने एकत्रित होकर शपथ लेकर सारी शक्ति—अधिकार इसे अर्पित कर दिये। मानव इतिहास का नया अध्याय आरम्भ हुआ एक व्यक्ति राजा बना। उससे यह अपेक्षा की गयी कि वह न्यायपूर्वक शासन करे। अपना फल सब ठीक ठीक भोग सकें। उस समय मात्स्य न्याय था। बड़ी शक्ति छोटी को खत्म कर देती थी। प्रबल दुर्बल को नष्ट कर देता था। तोले
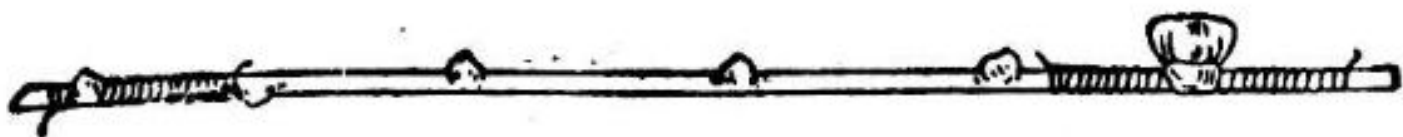
भर की मछली को सेर भर की, सेर भर की मछली को मन भर की, मन भर की मछली को टन भर की मछली खा जाती थी। इसी प्रकार चूहा को बिल्ला, बिल्ला को कुत्ता, कुत्ते को भेड़िया, भेड़िये को बाघ, बाघ को सिंह खा जाता है—एक दूसरे का शोषण करते हैं इसी प्रकार मनुष्य भी खूंखार बनकर शोषक बन गया था। इसी को रोकने के लिये दीर्घकाय की व्यवस्था की गयी थी—परन्तु इसमें सन्देह बना रहा कि राजा रक्षक से कभी भक्षक बन सकता है ऐसी दशा में क्या हो। राज्य में कहीं गड़बड़ी हो तो क्या हो ? अतः हाब्स ने उस समय को परिस्थितियों के अनुसार राज्य का जन्म परस्पर समझौते के द्वारा बताया। परन्तु यह समझौता एक पक्षीय था। एकांगी था। केवल जनता की ओर से शपथपूर्वक अधिकारों को राजा (मानव-देव) दीर्घकाय को सौंपे गये थे, परन्तु दीर्घकाय द्वारा कोई शपथ नहीं ली गयी, फलतः वह पूर्ण स्वेच्छाचारी बना। मानव-देव के स्थान पर दानव ही बना। दीर्घकाय के बनाये नियम ही सर्वमान्य रहे, जनता को उसका विरोध करने का भी अधिकार नहीं था। भारतीय शास्त्रों ने इसीलिये राजा को धार्मिक नियमों से नियन्त्रित रहना आवश्यक बताया। जैसे बिना नकेल का ऊंट, बिना लगाम का घोड़ा, बिना अंकुश के हाथी, बिना ब्रेक के रेल, मोटर, साईकिल खतरनाक होते हैं। इसी प्रकार जितना बलशाली शक्तिशाली शासक हो उस पर उतना ही शक्तिशाली अंकुश होना आवश्यक बतलाया गया है। यदि अस्त्रबल, शस्त्रबल, बाहुबल, सब कुछ राजा के पास ही हो और उसे नियन्त्रित करने के लिये कोई अंकुश न रहे तो फिर संसार का सर्वनाश ही तो होगा। जो जनता अधिकार दे सकती है वह वापिस भी ले सकती है। राजा बना सकती है तो उसे पदच्युत भी कर सकती है, इसीलिए वेन जैसे उदण्ड शासक को जनता ने हटा दिया था।

तो हाब्स का 'दीर्घकाय सत्ताधारी मानव निरंकुश था। वही राजा था वही सेनापति, वही न्यायाधीश था। हाब्स के अनुसार हत्या के भय से मनुष्य का व्यक्तिगत स्वतन्त्रता छोड़कर एक अनियन्त्रित शासक की शरण होना वैसा ही है जैसे एक जंगली बिल्ली से डरकर खूंखार शेर की शरण में जाना।' रूसो का कहना है कि 'स्वतन्त्रता प्रकृति की देन है, उसका परित्याग मनुष्यता का परित्याग है।' हाब्स के सिद्धान्त को न तो प्राचीन धार्मिक लोगों ने ही माना और न जड़वादियों के ही वह गले में उतरा। अतः जानलाक (इंग्लैण्ड) ने सिद्धान्त निकाला कि जो जनता दीर्घकाय को अधिकार दे सकती है वह छीन भी सकती है। वकील पैरवी न करे तो वकील को बदल दो। ऐसी ही यदि राजा ठीक न चले तो राजा को बदलने का अधिकार भी जनता को है। अन्यायी शासक-राजा को कुत्ता की मौत मारने में भी पाप नहीं है। परन्तु नैसर्गिक नियमों के उल्लंघन का अधिकार राज्य को लॉक ने नहीं दिया। सभ्य समाज के निर्णय को ही मान्यता दी। परन्तु इससे भी काम न चला तो कार्यपालिका, न्यायपालिका एवं राज्य संसद—इन तीनों की स्थापना हुई। लाक के मतानुसार समाज ही

**"सर्वं खल्विदं ब्रह्म।**

(वह सब निश्चय ही ब्रह्म है।) —छान्दोग्योपनिषद

श्रेष्ठ है राजा नहीं । सरकार समाज की संरक्षकमात्र है उसकी भोक्ता नहीं ।

भारतीय राजनीति में सदा से ही समाज को सर्वप्रथम माना जाता है, उसमें वर्णाश्रम धर्म का समन्वय है। शासक धर्म एवं समाज के प्रति उत्तरदायी है। शासन बदलते हैं पर समाज और धर्म नहीं बदलते। राज्य के नियम धर्मशास्त्रों के ही अनुकूल हो सकते हैं। व्यक्तिगत वैध सम्पत्ति पर आघात अन्याय माना जाता है। अन्यायी शोषक भ्रष्ट शासक को हटा देने में ही कल्याण है। आज भारत में ऐसे राजाओं को हटा भी दिया गया है। कई राजा हमारे भक्त थे। दिल्ली महायज्ञ चला। नरेन्द्रमण्डल को भी निमन्त्रण देने गये तो भारतवर्ष के इन राजाओं ने पूछा कि 'यज्ञ क्या होता है ?' शराब पीये हुये थे—जनता की सुख-सुविधा का इनमें कितना विचार-विवेक था वे जानें। इतना स्पष्ट है कि जनता ने ऐसे अयोग्य शासकों को एकदम नकार दिया, हटा दिया। तो जान लाक ने भी यह अधिकार छीनने का सिद्धान्त दिया जनता को। स्वतन्त्रता आवश्यक पर इसकी सगी बहन सतर्कता भी अत्यन्तावश्यक है। जैसे आत्महत्या करने की, नंगा नाचने की, जहन्नुम में जाने की स्वतंत्रता खतरनाक ऐसे ही सतर्कताहीन स्वतंत्रता भी खतरनाक होती है। एम० एल० ए०, एम० पी० हमारे जनता के अनुकूल कार्य रहा है कि नहीं यह देखकर उसे बदल भी सकते हैं। यहाँ विस्तार से वर्णन अभीष्ट नहीं है हमारे ग्रंथ 'मार्क्सवाद और रामराज्य' में इस पर विस्तार से लिखा गया है जिज्ञासु व्यक्ति उसे पढ़ सकते हैं।

संक्षेप में यही है कि राजा भी मनमाना शासन नहीं कर सकता। उसके लिये भी संविधान होना आवश्यक है। उसी के अनुसार सरकार शासन करे। वह कानून परम्परा एवं शास्त्रों के आधार पर होना चाहिये। समाज के योग्य विद्वानों के मतानुसार संविधान तैय्यार हो तब शासन हो न्याय-अन्याय का उसमें पूरा विचार हो। खतरा यह खड़ा होता है यहाँ कि विधान को आँख नहीं होती—वह अन्धा होता है। हत्या का चश्मदीद गवाह न हो तो दण्ड कैसे ? इसलिए कानून के पास न आँख हैं न हाथ। गुप्तचर विभाग द्वारा दौड़ धूप होती है सत्य जानने हेतु। प्रत्यक्षदर्शी गवाह लाओ तो विधान निर्णय दे। गवाह लाया गया परन्तु वह यदि सच्चा व ठीक न हो तो संविधान क्या करेगा ? खाली संविधान कुछ नहीं कर सकता : इसीलिए असंख्यों कानून आज आल्मारी में पड़े सड़ रहे हैं न्याय नहीं मिल पाता। वह तभी सफल हो सकता है जब सजग शासन शक्ति हो। मान लो गवाह भी मिल गया, अपराधी को पकड़ भी लिया गया परन्तु यदि हत्यारा, चोर, अपराधी चालाक निकला, फरार हो गया, पुलिस, अदालत को धोखा चकमा देकर दण्ड से बच निकला तो फिर भी न्याय कुछ नहीं कर सकता - अपराधी बच सकने में सफल हो जाते हैं। अतः हाब्स का दीर्घकाय (महामानवदेव,) जान लॉक की जनवादी संस्थाएं एवं फ्रांस की राज्यक्रान्ति के प्रवर्तक रूसो का सामाजिक अनुबन्ध

**"सर्वोऽहं विमुक्तोऽहम् ।"**

( मैं सर्वरूप हूँ, मुक्त हूँ। )
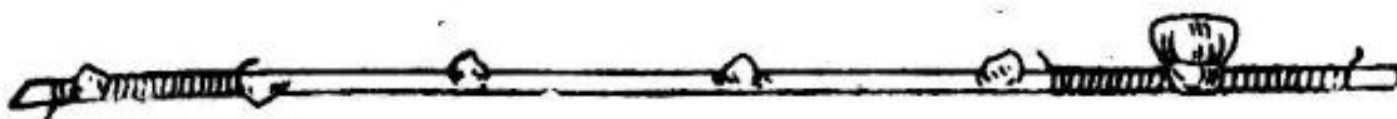
आदि से भी ऊपर एक बात आती है 'धर्म' की ।

महाभारतकार महर्षि व्यास का कथन है कि –

"गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम् ।
अथ प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥"

'आत्मवानों का शासक गुरु होता है, दुरात्माओं का शासक राजा होता है, और प्रच्छन्न पापों का शासक वैवस्वत यमराज होते हैं' । तो जो राजा गुरु से भी कहे कि यह गलत है ऐसा ऐसा न करो । आचार्यों एवं महात्माओं पर भी अपनी इच्छा थोपे-स्वयं दुरात्मा, दुराचारी, परस्त्रीगमन करने वाला, मद्यपी, दुर्व्यसनी हो उसे हटा देना चाहिये । क्योंकि वह दुराचारियों, दुरात्माओं पर कैसे शासन कर सकता है । इन पापियों पर शासन करने हेतु ही राजा की आवश्यकता है । जो प्रत्यक्षतः अपराध करे, पाप करे उसको दण्ड देने का कार्य तो शासक—राजा का होता ही है परन्तु जो शासन को न्याय को संविधान को चकमा देकमा देकर धोखा देकर प्रच्छन्न रूप से पाप करता है, अपराध करता है उस पर यमराज शासन करते हैं—क्योंकि यमराज को, सर्वद्रष्टा को, सर्वसाक्षी को चकमा नहीं दिया जा सकता, धोखा नहीं दिया जा सकता । तो दण्ड-विधान, शासन-संविधान समाज के लिये आवश्यक है फिर भी आगे चलकर जहाँ लौकिक-शासक की, न्याय की, विधान की पहुंच नहीं हो पाती वहाँ आगे धर्म की आवश्यकता, अनिवार्यता है । यह धर्म सूक्ष्म तत्व है यह दीखता नहीं परन्तु सबको देखता रहता है, सर्वद्रष्टा है, सर्वसाक्षी है ।

समझदार लोगों ने जो सोचकर नियम बनाये वही संविधान है । बहुत से संविधानों की नकल करके हमारा संविधान बनाया गया है । डा० अम्बेदकर ने देश, काल, परिस्थिति का अध्ययन, मनन करके अपनी बुद्धि से जो विधान बनाया, बताया गया, कि उस पर ६५ लाख रुपया व्यय हुआ । छः महीने बाद ही त्रुटियाँ निकलने लगीं, धारा ३१, ६४, १९ में संशोधन होने लगे । आज तो मूलाधिकार का भी संशोधन हो रहा है । मानव बुद्धि सीमित होती है उसमें पूर्णता सम्भव ही नहीं है । मनुष्य को बुरे काम से रोको मत तो प्रवृत्ति और बढ़ेगी हो, परन्तु रजनीश ज्यादा जोर इस बात पर देते हैं 'कि कुछ छिपाओ मत, नंगे घूमो— कपड़े की आवश्यकता – निषेध का प्रपंच, स्वयं खत्म हो जायेगा । बुरे काम का परिणाम देखकर मनुष्य स्वयं उसे छोड़ देगा – वही परित्याग सच्चा होगा, पक्का होगा—' परन्तु समझदार लोग कहते हैं कि यह बुद्धिमानी नहीं है । दीपकों पर पतंग कब से मरते आ रहे हैं, दादा, बाबा मर गये परन्तु कोई सबक ग्रहण नहीं किया । इस प्रकार की निरर्थक बातों के अनुभव में अमूल्य समय हमें नष्ट नहीं करना चाहिये । वे कहते हैं कि 'जहाँ निषेध हो रोक हो वहीं अधिक प्रवृत्ति होती है अतः मनुष्य पर किसी प्रकार का निषेध नहीं होना चाहिये परंतु यह

**"योऽसौ सोऽहं हंसः सोऽहमस्मि ।"**

( जो वह है, वह मैं हूँ । मैं वह हूँ और वह मैं हूँ । )

भी ठीक नहीं है क्योंकि जहाँ बिजली के मीटर-खम्भे आदि पर खतरा लिखा होता है, स्पर्श निषेध लिखा होता है, तो उधर किसी भी समझदार प्राणी की प्रवृत्ति नहीं होती। माता, पिता, अध्यापक बच्चों को विधि-निषेध की शिक्षा देते हैं उनसे बालकों को लाभ होता है जिसे वह करने से मना करते हैं उसे करने की प्रवृत्ति प्रायः बालकों में नहीं होती, वे तो उसे श्रद्धापूर्वक मानकर तदनुसार आचरण करके लाभान्वित ही होते हैं। ऐसा तो कोई लाखों में एक बच्चा होता होगा जो माता-पिता-गुरु वचनों की अवहेलना करके कहता हो कि हम तो ऐसे नहीं मानते स्वयं अनुभव करके ही सीखेंगे—अतः यह प्रवृत्ति बेकार है, उच्छृंखलता को बढ़ाने वाली है। जहर का अनुभव करने से कितने मर गये कि वे अनुभव करके इसका गुण-दोष, स्वाद इत्यादि का सच्चा वर्णन लिखेंगे परंतु बेकार रहा। हमारे ऋषियों ने समाधि इत्यादि द्वारा जो जाना अनुभव किया, शास्त्रों में वही लिखा। भारतीय शास्त्रों में वर्णित है कि मात्स्य-न्याय के पहले सभी व्यक्तियों में सत्वगुण की प्रधानता थी। सभी धार्मिक एवं ईश्वरवादी थे। सभी प्राणिमात्र को ईश्वर का पुत्र समझते थे। सभी परस्पर समानता, स्वतंत्रता, भ्रातृता का व्यवहार करते थे। कोई अपराधी, शोषक था ही नहीं। इसलिए राजा, राज्य एवं दण्ड-विधान आदि अनावश्यक थे। धर्म नियन्त्रित जनता आपस में ही सब काम चला लेती थी। जब उसमें सत्त्व का ह्रास हुआ, तमोगुण, रजोगुण बढ़ा, धर्म घटा, अधर्म का विस्तार हुआ, तब मात्स्यन्याय फैला। तब प्रजा ने पीड़ित होकर ईश्वर से प्रार्थना कर उसके अनुग्रह से चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम आदि लोकपालों के गुणों तथा अंशों से युक्त राजा को प्राप्त किया और उसे विविध प्रकार से सम्मानित किया 'महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति' (मनु० ७/८) इत्यादि रूप से भारतीय शास्त्रों में राजा का महत्व गाया गया है। भारतीय धर्मशास्त्रों का स्पष्ट मत है कि मात्स्यन्याय से पीड़ित जनता की मांग पर ही विशिष्ट शक्ति एवं गुण सम्पन्न शासक ईश्वर द्वारा नियुक्त हुआ था। जनरंजन करना उसका परमकर्त्तव्य है। अतः जनवाद का धर्म-नियन्त्रित रामराज्य जैसे शासन में पूर्ण उपयोग है। मार्क्सवादियों के अनुसार राज्य के दो प्रकार हैं—एक सर्वहारा का अधिनायकत्व। और दूसरा पूंजीपतियों का अधिनायकत्व रूसी राज्य, राजनीति शास्त्र की परम्परा के विपरीत भी है। प्रजातन्त्र के अंग-भाषण, कार्य, संगठन आदि की स्वतंत्रता का वहाँ कोई मूल्य नहीं है। सोवियत व्यवस्था के विरुद्ध वहाँ कोई मत व्यक्त नहीं कर सकता, न कोई संगठन ही हो सकता है। एक दलीय व्यवस्था ही वहाँ सब कुछ है। राजनीति के महापण्डित चाणक्य का कथन है कि शक्तिमद से बड़ा कोई मद नहीं है। तुलसीदास जी की यह उक्ति कि 'प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं' सभी व्यवस्थाओं पर लागू होती है, परंतु धर्म नियन्त्रित रामराज्य प्रणाली ही एक मात्र ऐसी व्यवस्था है, जिसमें राज्य मद का संचार नहीं हो पाता। धर्महीन सोवियत शासन शक्ति-मद का अपवाद नहीं कहा जा सकता। सर्वहारा दल के अधि-

**"सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय।"**

(उसने इच्छा की, मैं बहुत होऊँ, प्रजारूप में उत्पन्न होऊँ।)

नायकत्व में राजनीति तथा सामाजिक सत्ता का अन्त नहीं होता। नये सत्ताधारी शक्ति-मद के अपवाद नहीं होते। क्रान्ति के उपरान्त ये शक्तिशाली व्यक्ति अपने स्थानों से हटना नहीं चाहते।

महाभारत में भीष्म पितामह जी ने अराजकता को पाप बताया है। उन्होंने कहा कि मात्स्यन्याय से पीड़ित मानव ने एकत्र होकर सदाचार सम्बन्धी नियम बनाये जैसे कठोर वाणी, परस्त्री, परधनहरण आदि के त्याग का नियम बनाया गया। इससे काम, क्रोध, लोभ, मोहादि से छुटकारा मिलता है और मनुष्य घृणित नारकीय यातनामय, भयभीत एवं सशङ्क क्षणिक जीवन से हटकर सभ्य जीवन में प्रवेश करता है। भीष्म का समाज निर्माण सामाजिक अनुबन्ध या पारस्परिक समझौता था। किन्तु जब नियम निर्माण के पश्चात् नियामक के बिना उनका पालन न हो सका तो प्रजा ने ब्रह्मा के पास जाकर शासक के लिए अनुनय विनय की। तब ब्रह्मा जी ने प्रजा के सामने अष्ट लोकपालों के दिव्य प्रताप, तेज आदि से युक्त मनु को प्रस्तुत किया। इस तरह राजा का वरण करके प्रजा ने राज्य का निर्माण किया। भीष्म जी के अनुसार वस्तुतः कृतयुग में सभी प्रजा धर्मनिष्ठ तथा परम विवेक, विज्ञान, संयम-सम्पन्न थी। काल क्रम से सत्वगुण की कमी होने पर धर्म का ह्रास होने से रज, तम एवं तदुद्भूत अधर्म बढ़ने पर मात्स्यन्याय फैला। इस प्रकार शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार संसार विकास की अपेक्षा पतनोन्मुख है। विष्णु के पुत्र ब्रह्मा सर्वज्ञ हुये। ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठ आदि सर्वज्ञकल्प हुये। ब्रह्मा जी से दण्डनीति शास्त्र देवताओं ने ग्रहण किया। उसे सर्वप्रथम शंकर जी ने ग्रहण किया उनसे बृहस्पति, शुक्र, इन्द्रादि ने किया और उसका संक्षेप भी किया। योग्य समर्थ दण्ड प्रणेता प्राप्त करने देवता विष्णु के पास गये उन्होंने दिव्य सद्गुणों से सम्पन्न एक निर्दोष विरजा राजा निर्माण करके दिया। वह त्याग वैराग्य में रुचि रखता था। उसका पुत्र कीर्तिमान और पौत्र कर्दम हुआ। फिर अंग राजा बने और उसके बाद वेन राजा हुआ। वह उत्पथगामी था। इसीलिये ऋषियों ने उसे मार डाला। उसका पुत्र पृथु हुआ जो बड़ा योग्य और धर्मात्मा था। शुक्राचार्य उसके पुरोहित थे। बालखिल्य ऋषि मन्त्री बने। देवताओं ने तथा इन्द्र के साथ विष्णु ने पृथु का अभिषेक किया। प्रजारंजन किया अतः वे राजा कहलाये। तत्कालीन जन प्रतिनिधि ऋषियों ने उसे कुछ नियम बताये उसने तदनुसार पालन की प्रतिज्ञा की। इसे ही सारांश में भीष्म का सामाजिक अनुबन्ध कहा जा सकता है। परन्तु हाब्स, रुसो, जानलाक आदि के समाज उस समय राजनीतिक जीवन से अनभिज्ञ अज्ञानी थे परन्तु भीष्म द्वारा वर्णित कृत युग के राज्य विहीन प्रजा का वर्णन अतिरेक एवं अज्ञानमुलक न होकर धर्म ज्ञानोत्कर्षमूलक था। वह धर्म राज्य सर्वज्ञता, ब्रह्मनिष्ठता की आधारभित्ति पर स्थित था और राजदण्डादि से मुक्त था, क्योंकि सभी विवेकी थे। वेद उन्हें कण्ठस्थ थे। उन्हें कोई वस्तु अविदित नहीं थी। सब सुखी शान्त, सन्तुष्ट थे विविध वैभवों से पूर्ण थे। काल-

**"सतपोऽतप्यत, सतपस्तप्त्वाइदं सर्वमसृजत यदिदं किञ्च।"**

**( उसने तप किया, तप करके जो कुछ यहाँ विद्यमान है, इस सबकी सृष्टि की। )**

क्रम से प्राक्तन कर्मानुसार आसुरी वृत्तियों के जागरण से दैवीवृत्तियों का अभिभव हुआ अध: पतन हुआ। खिन्न होकर पुन: वे धर्म नियन्त्रित राज्य स्थापना के प्रयोजन से ब्रह्मा जी की शरण गये और उनसे राजनीति-शास्त्र प्राप्त किया। उसकी पूर्ण कार्यान्विति के लिये विष्णु के पास गये और उनसे राजा प्राप्त किया उस राजा को तथा अपने को वचनबद्ध करके सीमित शर्तों के साथ सामाजिक समझौता या सोशल-कंट्राक्ट-थ्योरी के अनुसार धर्म नियन्त्रित राजा का राज्य स्थापित किया। इस प्रकार पाश्चात्य विचारकों के राजनीतिक सिद्धान्तों एवं भारतीय चिन्तकों एवं धर्मशास्त्रों के सिद्धान्तों की संक्षेप में यहाँ तुलनात्मक समीक्षा की गयी है जिस पर आप लोग विचार करें।

□□

[ – फिर भी समता या विषमता संतुलित न रहनी आवश्यक है। अति विषमता, अति समता दोनों ही अव्यवहार्य है। जैसे अंग में भी सब बराबर नहीं होते, हाथ की अंगुलियां भी सब एक-सी नहीं होती हैं। फिर भी उनकी समता-विषमता सन्तुलित रहती है। यही स्थिति समाज की भी उचित है। यदि कम्यूनिस्ट काल्पनिक समता के आधार पर सिद्धान्त बनाना चाहते हैं तो अध्यात्मवादी के यहां आत्मा ही वास्तविक समानता स्वतन्त्रता भ्रातृता की आधारभित्ति है। इतना ही नहीं, अध्यात्मवादी ही ऐसी भी अवस्था का आना अनिवार्य मानते हैं, जब सभी परमानन्द ब्रह्मस्वरूप ही होंगे, विषमता की गन्ध भी कहीं उपलब्ध नहीं होगी। परन्तु व्यवस्था तो करनी है वर्तमान स्थिति की, अत: हम कल्पनाओं को छोड़कर उपस्थित अवस्था में क्या हो सकता है, यही विचार करना उचित समझते हैं। वैधानिक साधनों से समष्टि जगत् को उच्च से उच्च स्तर पर पहुंचाना राम राज्य का आदर्श है। ......अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि के नियम विश्वव्यापी एवं विश्व के हितार्थ हैं। प्रत्येक व्यक्ति को समाज, राष्ट्र एवं विश्व के हानिकारक किसी काम में नहीं प्रवृत्त होना चाहिये। समष्टि के अविरोधेन ही व्यष्टि की चेष्टा आदरणीय है। अहिंसा आदि समष्टि सामाजिक समझौते का आदर सबको करना चाहिये। ]

**"भीषास्माद् वात: पवते भीषोदेति सूर्य:।"**

( इसी के भय से पवन चलता है, इसी के भय से सूर्य उदय होता है। )

# करपात्री-सूक्त

"...... धर्म में परमप्रमाण मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद ही है। "चोदनालक्षणोऽर्थोधर्मः" 'धर्म जिज्ञासमनानां प्रमाणं परमं श्रुतिः', 'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणन्ते'—स्मृतियाँ वेदमूलक होने से प्रमाण होती हैं। श्रुति विरुद्ध स्मृति अनादरणीय होती हैं। प्रत्यक्ष श्रुति से अविरुद्ध स्मृति की श्रुतिमूलकता का अनुमान करके ही प्रामाण्य माना जाता है। "विरोधे त्वनेपेक्षं स्यादसतिह्यनुमानम्।" (जै० सू०) इससे भीविदित होता है कि श्रुति के अर्थ का ही स्मृति अनुसरण करती है। श्रुति या वेद अनादि हैं। अतः तन्मूलक स्मार्त एवं पौराणिक धर्म भी अनादि ही है। चार धाम, सात पुरियाँ एवं सभी स्मृति, पुराणेतिहास प्रसिद्ध तीर्थ भी अनादि ही हैं।

□ □ □

"आधुनिक विधान निर्माता अल्पज्ञ होते हैं, अपने देश का भी उन्हें पूरा ज्ञान नहीं होता है। इसलिये उनमें पुनः संशोधन की आवश्यकता पड़ा करती है। वर्तमान भारतीय संविधान में २० वर्षों में बीसों संशोधन करने पड़े हैं। परन्तु अनादि वेद एवं ईश्वरीय ज्ञान सर्व देश, सर्वकाल, सब परिस्थियों को परिलक्षित करते हैं। अतएव तन्मूलक धर्मशास्त्र, पुराण, इतिहास, तन्त्र, आगम आदि भी सब देश काल परिस्थियों को परिलक्षित करते हैं। पूर्वोत्तर मीमांसा एवं निबन्ध ग्रंथों में सभी का समन्वय करके ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है। महाभारत आदि पुराणों तथा रामायण एवं वेदों में भी मनु का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। मन्वर्थं विपरीत स्मृतियां त्याज्य कही गई हैं — "मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्नैव शस्यते।"—बृहस्पति।

□ □ □

" .. श्री रामानन्द, नित्यानन्द, निम्बादित्य, विष्णुस्वामी, मध्वाचार्य, रामानुजाचार्य, वराह-मिहिराचार्य, कबीर दास आदि ने मुसलमानों को वैष्णव या शैव बना लिया; इसमें सनातनी शास्त्रों का विरोध नहीं है; क्योंकि किसी का भी विष्णु-शिव का भजन करना, तिलक, कण्ठी पहनना, शिखा रखना, गङ्गास्नान करना, मन्दिर का शिखर दर्शन करना शास्त्र-सम्मत ही है। हाँ, किसी ईसाई या मुसलमान को ब्राह्मण, क्षत्रिय बनाकर उसे वेदादि अध्ययन एवं तदनुसारी कर्म करने का अधिकार प्रदान करना या जन्मना ब्राह्मणादि के साथ रोटी-बेटी आदि का व्यवहार करना अवश्य ही शास्त्र विरुद्ध है। तुलसीदास जी के—

> "श्वपच शबर खश यवन जड़ पामर कोल किरात।
> राम कहत पावन परम होत भुवन विख्यात॥"
> "आभीर यवन किरात खश श्वपचादि अति अघरूप जे।
> कहि नाम बारेक तेऽपि पावन होत राम नमामि ते॥"

इन वचनों का तो धर्म शास्त्रों से कोई विरोध है ही नहीं; क्योंकि इन वचनों से उनका

पवित्र और कल्याणकारी होना ही कहा गया है। यह नहीं कहा गया कि वे सब ब्राह्मण, क्षत्रिय होकर वैदिक अग्निहोत्रादि करने लगें या ब्राह्मणादि उनके साथ रोटी-बेटी करने लगें।

"......हिन्दू धर्म में गृहीत जन्मना ईसाई-मुसलमान की भी एक हिन्दू-श्रेणी हो और वे अहिंसा, सत्य, भक्ति आदि कर्म का अनुष्ठान करें, आपस में ही रोटी-बेटी का व्यवहार करें, तब तो ठीक ही है; परन्तु यदि हिन्दू धर्म में दीक्षित जन्मना ईसाई, मुसलमान आदि को जन्मना ब्राह्मण, क्षत्रियों में मिलाकर उन्हें वेदाध्ययन और वेदोक्त अग्निहोत्रादि कर्मों में अधिकार प्रदान करना है और जन्मना ब्राह्मणादि से रोटी-बेटी का सम्बन्ध करना ही मान्य है, तो यह सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है। जो भी वैसा कहता है उसका वह कथन शास्त्रसम्मत तो है ही नहीं। इस पर मैं और मेरे साथी सदा ही शास्त्रार्थ के लिये प्रस्तुत हैं और रहेंगे।"

"देश-विदेश के सभी प्रकार के हिन्दुओं का सार्वभौम संघटन होना चाहिये जो ऐसा कहते हैं वह ठीक है हिन्दु में सबका अन्तर्भाव है ही—परन्तु उन संघटनों में मूल हिन्दु-शास्त्र एवं मूल हिन्दु-धर्म तथा वर्णाश्रमी शुद्ध हिन्दू को मिटा देने या सबको ही संकर बना देने का जी तोड़ प्रयत्न चल रहा है, यह अनुचित है। ....११३१ शाखात्मक वेद, मन्वादि धर्म शास्त्र, षडदर्शन, पुराण, रामायण, भारत, हिन्दू धर्म के निर्णायक हैं, इतना ही क्यों तन्त्र और आगम तथा प्राकृत भाषामय हनुमान चालीसा तक हिन्दुओं के धर्मग्रंथ हैं। वेद के अविरुद्ध पुराणादितथा वेदादि अविरुद्ध सदाचार भी शिष्टाचार-नुमित स्मृति के अनुसार मान्य होता है। मनमाने ढंग से नहीं।"

भारत वर्ष धर्म प्रधान देश है, यहाँ अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक परब्रह्म परमात्मा सगुण साकार, सच्चिदानन्द भगवान् राम, भगवान् कृष्ण के रूप में प्रकट होकर स्वयं धर्म की रक्षा करते हैं; यहीं ब्रह्मद्रव-रूपा गङ्गा और प्रेमद्रवरूपा भगवती यमुना प्रवाहित हो रही हैं, सरयू, गोमती, नर्मदा, कावेरी, कृष्णा आदि ऐसी-ऐसी पुण्यतोया नदियाँ यहाँ हैं, जिनके स्नान, पान आदि से जन्म-जन्मान्तर के पाप नष्ट होते हैं। भगवान् शिव, भगवान् विष्णु तथा उमा, रमा आदि अनेक देवताओं के चमत्कार-पूर्ण क्षेत्र इसी देश में हैं। यहाँ जन्म पाने के लिये देवता भी तरसते हैं।

शास्त्र और धर्म ही एक ऐसी वस्तु है जिससे सभी में सन्तोष एवं सामञ्जस्य की भावना प्रतिष्ठित होती है। शास्त्र और धर्म के ही प्रभाव से लोग परस्त्री एवं परद्रव्य को विष के समान समझते थे। लोगों की यह धारणा थी कि सम्पत्ति-विपत्ति, सुख-दुख, में अपने शुभाशुभ कर्म ही मुख्य हेतु हैं; क्यों हम दरिद्र एवं दुखी हुए ? इसका समाधान वे इस तरह कर लेते थे कि जैसे अपने कर्मवश कोई पशु, कोई पक्षी, कोई अन्य, कोई बधिर या उन्मत्त होता है, वैसे ही कर्मों के अनुसार ही कोई भोग-सामग्री विहीन और कोई सम्पन्न होता है। आज के अशान्त एवं उल्वण वातावरण में धार्मिक भावनाओं के प्रतिष्ठापन की अत्यन्त आवश्यकता है।

# पत्राचार

[ स्वामी श्री करपात्री जी महाराज जैसे बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति ने अर्द्ध शताब्दी तक सम्पूर्ण राष्ट्र को अपने ज्ञान, तप, त्याग, विद्या, कर्म एवं धर्मानुष्ठानादि के माध्यम से सतत् आलोकित रखा। उन जैसे कर्मठ संघर्षशील, आन्दोलनकारी, धर्मनिष्ठ कारक-पुरुष ने अनेक साधु-पुरुषों, श्रीमानों, राजनेताओं आदि को असंख्यों पत्रादि भेजे होंगे जो स्वयं में महत्वपूर्ण ज्ञानप्रद एवं कल्याणकारी होंगे। न तो सम्पूर्ण पत्र सुरक्षित रखे जा सके न ही उनके संकलन का ही अभी तक प्रयास किया जा सका है। अतः विभिन्न अवसरों पर प्रेषित कतिपय पत्र जो हमें उपलब्ध हो सके, उन्हीं का प्रकाशन कर यहाँ सन्तोष करना पड़ रहा है; पाठकगण स्वयं पढ़कर देखें कि महाराज श्री किस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों में अपने व्यक्तिगत पत्रों द्वारा लोगों को धर्म कार्यों में प्रेरित करते थे। ]

**श्री स्वामी करपात्री जी तथा श्री गाँधी जी का पत्र व्यवहार**

१९-६-४७ न० दि०

श्री गोस्वामी जी,

स्वामी भास्करानन्द जी ने आपके बारे में मुझसे बातें की हैं। धर्मरक्षा के बारे में अगर आप आगामी मङ्गल या बुध को यहाँ पधार सकते हैं, तो हम वार्तालाप कर सकते हैं पत्रोत्तर की प्रतीक्षा करूंगा।

आपका

**मो० क० गाँधी,**

❋ ❋ ❋

श्रावण सित षष्ठी।

स्वस्ति श्री गाँधी जी ! नारायणस्मरण।

श्री स्वामी भास्करानन्द जी द्वारा आप का पत्र मिला। धर्मरक्षा के सम्बन्ध में वार्त्तालाप की अपेक्षा प्रथम पत्र द्वारा विचार अधिक उपयुक्त होगा, इससे आपसी दृष्टिकोण विज्ञात हो जायेंगे और आप के अमूल्य समय का अपव्यय न होगा। फिर सुविधानुसार मिलना भी सार्थक होगा। धर्म संघ की पाँच माँगों से आप अवगत ही होंगे। आपके भावानुसार कांग्रेसी स्वराज्य रामराज्य होगा। उसमें सबको सरल, सस्ता न्याय मिलेगा। आप जानते हैं कि रामराज्य में एक कुत्ते को भी न्याय मिला था। ऐसी स्थिति में हम लोग न्याय से क्यों वंचित हैं ?

भारत की अखण्डता का प्रश्न अब अवश्य जटिल है पर गोरक्षा का प्रश्न तो स्वतन्त्र भारत में गोवध-निषेध का नियम विधान-परिषद में मान लेने से हल हो सकता है। देशी राज्यों में यह है भी।

धर्म में हस्तक्षेप न करना भी कोई कठिन नहीं, विधान-परिषद में धार्मिक स्वतन्त्रता की घोषणा है ही, उसी के अनुसार, मुसलमान आदि के धर्म में हस्तक्षेप नहीं होता। परन्तु सनातन धर्म पर धर्म विरोधी कानूनों द्वारा बराबर आक्रमण होता है। मन्दिर-प्रवेश, असवर्ण-सगोत्र विवाह, तलाक आदि सामाजिक वस्तु नहीं अपितु धार्मिक हैं, क्योंकि धर्माधर्म का निर्णय अपने-अपने सम्प्रदाय के धर्म ग्रंथों और धर्माचार्यों की व्याख्या पर ही निर्भर है। कुरान और बाईबिल के आधार पर जैसे इस्लाम तथा ईसाई धर्म के निर्णय अवलम्बित हैं, इसी तरह प्रत्येक सम्प्रदाय के लोग अपने धर्माचार्यों द्वारा व्याख्यात धर्मग्रंथों से ही धर्म का निर्णय करें यही न्याय है। आत्मप्रेरणा आदि को धर्म में कोई प्रमाण नही मानते। इस तरह सनातन धर्म के आचार्यों और धर्मग्रंथों से निर्णीत वस्तु को धार्मिक न मानना और उसे सामाजिक मानकर तटस्थ व्यक्ति या सरकार द्वारा उसमें हस्तक्षेप किया जाना सर्वथा अन्याय है।

बस, इन्हीं कुछ प्रश्नों पर विचार हो जाने से सब बातें सुलझ जायेंगी। आशा है आप विचार करने की उदारता दिखलायेंगे।

ह० करपात्री

❋ ❋ ❋

श्री गोस्वामी जी,

२४-७-४७

आपका पत्र मिला, धन्यवाद।

धर्मसंघ की पाँच माँग मैं जानता हूँ ऐसा ख्याल है। मुझे कहना पड़ता है कि सनातन धर्म की प्रचलित मान्यता से मैं सहमत नहीं हूँ।

गोरक्षा का नाम मैंने गोसेवा कहा है। कानून से गोसेवा कम होती है, गोरक्षण भी कम।

मेरा सारा जन्म धर्मरक्षा में गुजरा है और गुजर रहा है। धर्मशास्त्र समयानुसार फिरता रहता है, इसीलिए मेरा विश्वास है कि आप की प्रवृत्ति से जहाँ तक मैं समझता हूँ धर्म को हानि पहुँचती है।

सनातन धर्म में अस्पृश्यता को कुछ भी स्थान नहीं है। अगर वह रही, तो मैं धर्म का नाश देखता हूँ। इतना मैंने संक्षेप में कहा।

आपका
मो० क० गांधी

❋ ❋ ❋

श्री हरिः

प्र० श्रावण सिताष्टमी

स्वस्ति श्री गाँधी जी ! नारायण स्मरण।

सनातन धर्म की प्रचलित मान्यता से आप सहमत नहीं सो ठीक। मुझे आपको उसे मनवाना इष्ट भी नहीं। किंतु मेरा तो इतना ही कहना है कि जैसे ईसाई, मुसलमान आदि को अपने

विश्वास के अनुसार ईसाई-इसलाम धर्म मानने और आचरण करने में स्वतन्त्रता है, वैसे ही सनातन धर्म की प्रचलित मान्यता से जो सहमत हैं, उन्हें अपने विश्वास के अनुसार धर्म मानने और आचरण करने में पूर्णस्वतन्त्रता हो, कानूनी रुकावट न डाली जाय।

धर्मशास्त्र समयानुसार बदलते रहते हैं, इसमें आपका तात्पर्य स्मृतियों की अनेकता और विभिन्नता से है, किंतु उनकी अनेकता और विभिन्नता समयानुसार परिवर्तन से नहीं, अपितु अनादि वेदादि शास्त्रसिद्ध तथा उनसे समस्त देश, काल, सम्पत्ति, आपत्ति, सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि आदि भेद-मूलक और प्रथमतः सिद्ध तथा निर्णीत है। समयानुसार उनमें कभी किसी ने परिवर्तन नहीं किया और न कभी कोई कर ही सकता है। अन्यथा परिवर्तनवादी परिवर्तनकर्त्ता किसे कहेगा ? यदि कहे कि हजारों पत्र-पत्रिका तथा करोड़ों व्यक्ति जिसे मानें उसी को, सो ठीक नहीं, क्योंकि वस्तु के स्वरूप तथा फल का ज्ञान जिस प्रमाण से हो, उसी प्रमाण के आधार पर परिवर्तन हो सकता है धर्म के स्वरूप तथा फल का ज्ञान प्रत्यक्ष, अनुमान से नहीं हो सकता, क्योंकि धर्म को मानने वाले उससे स्वर्ग-नरक तथा पर-लोक और जन्मान्तर में सुख-दुःख का होना भी मानते हैं। उनका ज्ञान किसी परिवर्तनकर्त्ता को कैसे हो सकता है, क्योंकि शास्त्रों के सिवा उसका दूसरा साधन ही नहीं। इसीलिये नेत्र से अज्ञात शब्द के ज्ञान के लिये श्रोत की तरह प्रत्यक्ष, अनुमान से अज्ञात धर्म को जानने के लिये शास्त्र है। यही कारण है कि प्रत्यक्ष अनुमित वाक्य शास्त्र नहीं। इसी से आत्म प्रेरणा को भी शास्त्र नहीं कह सकते। "तस्मा-च्छास्त्रंप्रमाणंते" यह गीता वाक्य और "चोदनालक्षणोऽर्थोधर्मः" – यह मीमांसा सूत्र यही संकेत करते हैं। दूसरे, धर्मशास्त्र को बदलना धर्म को ही बदलना होगा। ऐसी दशा में बदले हुए धर्म का फल कौन देगा ? मनुष्य कितना ही बुद्धिमान क्यों न हो, पर वह संसार के अनन्तानन्त प्राणियों के अनन्ता-नन्त धर्म तथा उनके फलों को नहीं ही जान सकता, फिर फल देने की बात ही क्या ? इसीलिए ईश्वर को फलदाता मानना होगा ! तब मनुष्य के परिवर्तित धर्म में ईश्वर की स्वीकृति चाहिये। उससे बिना करोड़ों मनुष्यों और हजारों पत्र-पत्रिकाओं के मान लेने पर भी वह धर्म नहीं कहा जा सकता। इसीलिये हम-सनातनी-सनातन परमात्मा ने सनातन जीवों के सनातन अभ्युदय-निःश्रेयस प्राप्ति के लिये सनातन वेदशास्त्र से जो सनातन मार्ग बताया, उसी को सनातन धर्म कहते हैं। परस्पर विभिन्न दृष्टिकोण रखने वाले एक दूसरे की प्रवृत्ति से धर्म का नाश देखें इसमें आश्चर्य नहीं।

गोसेवा का भाव आप का श्रेष्ठ है और मैं भी इसका प्रचार करता हूं। पर स्वतन्त्र भारत में हजारों बूचड़खानों का रहना क्या कलंक नहीं। फिर अनादि वेदशास्त्र सम्मत वर्णव्यवस्था, विवाह संस्था, मन्दिर मर्यादा और स्पर्शास्पर्श विवेक को कलंक कहकर कानून से नष्ट करना आवश्यक समझना, गो हत्या जैसे महापाप तथा कलंक को नष्ट करने के लिये कानून बनाना अनावश्यक समझना कितने आश्चर्य की बात है ? पूर्वोक्त सिद्धांतानुसार आप यह सब न मानें, तो भी जो मानें, उन्हें अपने विश्वासानुसार स्वतन्त्रता होनी चाहिये।

करपात्री
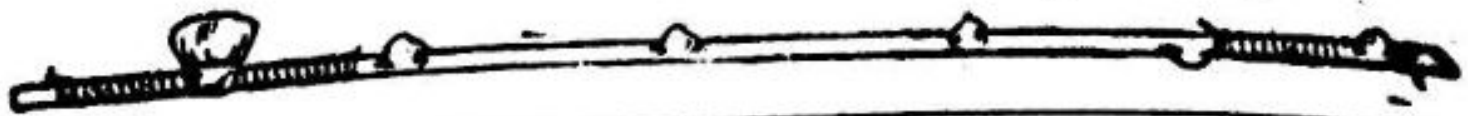
श्री हरिः

प्रथम श्रावण शु० ११,

स्वस्ति श्री गाँधी जी । जय धर्म ।

पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज का २५/७/४७ का पत्र आप को मिल चुका । किंतु आपका उत्तर न मिला । अतः उत्तर की प्रतीक्षा है । कृपया सूचित करें कि क्या विचार है ।

भवदीय

चन्द्रशेखर शास्त्री
मन्त्री श्री स्वामी करपात्री जी
धर्म संघ, निगम बोध घाट, देहली ।

* * *

श्री गोस्वामी जी महाराज,

२६-७-४७

आप के अगले खत का जवाब नहीं दिया, क्योंकि उसमें बोध ही था । मुझे ज्यादा कहने जैसा न था, इसलिए समय बचा लिया ।

आपका
मो० क० गाँधी

● ● ●

२० अक्टूबर१९४७ को आगरा जिला जेल से लिखा गया—

**स्वामी श्री करपात्री जी का नेहरू जी तथा पटेल को पत्र**

श्री हरिः

स्वस्ति श्रीयुत सरदार पटेल महोदय !
तथा पण्डित जवाहर लाल नेहरु !

आश्विन सित षष्ठी

नारायण स्मरण ।

ईश्वर की कृपा से आज आप के हाथ में देश का शासन है । अतएव, पहले की अपेक्षा अब आपका अधिक उत्तरदायित्व है । सुतरां मतभेदों, दलबन्दियों एवं व्यक्तिगत स्वार्थों और संघर्षों से अलिप्त रहकर सबके साथ न्याय करना ही आपका कर्त्तव्य है । कांग्रेस तथा श्री गांधी जी के आदर्शभूत रामराज्य में एक नगण्य 'श्वान' की भी बात सुनी जाती थी इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर कुछ आवश्यक बातों की ओर आपका ध्यान आकृष्ट कर रहा हूं ।

दिल्ली से चलने वाले अखिल भारतीय धर्मसंघ के आन्दोलन एवं उसकी गोवधबन्दी, भारत की अखण्डता, धर्म में हस्तक्षेप न हो, आदि पाँच माँगों से भी आप परिचित ही होंगे । दिल्ली की गड़-बड़ी आदि से वह आजकल मथुरा में केवल गोवधबन्दी के लिए चल रहा है । इसमें सन्देह नहीं कि

आपको पूरा ध्यान है। तथापि दूसरों की भी बातें अवश्य विचारणीय हो सकती हैं। हम लोग कितने पहले से भारत की अखण्डता की मांग करते थे, विभाजन से होने वाले भयंकर परिणामों को बतलाते थे, परन्तु उसकी उपेक्षा की गई। परिणाम वही हुआ जो होना था। यही स्थिति गोवधबन्दी की भी है। आप जानते हैं, भारत के हिन्दू बहुमत गोवधबन्दी चाहते हैं। धार्मिक, आर्थिक किसी भी दृष्टि से विचार करें, उनकी मांग उपेक्षणीय नहीं हैं। विधान में यद्यपि धार्मिक स्वतन्त्रा स्वीकृत की गई है, तथापि, सनातनियों के धर्मों पर असवर्ण, सगोत्र, हिन्दू-विवाह, हिन्दूकोड, हरिजन मन्दिर प्रवेश आदि वर्ण व्यवस्था विध्वंसक अनेक कानूनों द्वारा बराबर आक्रमण किया जा रहा है। माना कि आप सनातनियों के सिद्धांतों से सहमत नहीं हैं, तथापि जब ईसाई, मुसलमान आदि को अपने धर्म के मानने और आचरण करने में स्वतन्त्रता है, तब हिन्दुओं पर धर्म विरुद्ध कानून क्यों लादे जा रहे हैं ? हम यह भी जानते हैं कि आप लोग सनातनियों द्वारा की गई सनातन धर्म की व्याख्या नहीं मानते और धर्म की बातों को सामाजिक कहकर टालते हैं, फिर भी हमारा कहना है कि आप लोग राष्ट्रीय नेता हैं। जैसे आप के द्वारा व्याख्यात इस्लाम तथा ईसाई-धर्म, मुसलमान आदि को मान्य नहीं, किंतु वे अपने धर्म-ग्रंथों तथा धर्माचार्यों के आधार पर ही धर्माधर्म की व्यायख्या मानते हैं। आप की व्याख्या उन्हें मान्य नहीं है।

यदि हम यह भी मान लें कि आप हिन्दू हैं और हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में कुछ बोल सकते हैं, तो भी तथ्य यही है कि करोड़ों की संख्या में हिन्दू जनता अपने शास्त्रों और धर्माचार्यों में ही विश्वास करती है, वह आप की धर्मव्याख्या मानने को तैयार नहीं, फिर भी, अपने विश्वास के अनुसार अपना शास्त्र और धर्म क्यों न मानने दिया जाये और उस पर कानूनी हस्तक्षेप क्यों किया जाये ? यदि यह ठीक है तो जहाँ धार्मिक स्वतन्त्रता की घोषणा है, वहीं यह भी जोड़ दिया जाये कि धर्म की व्याख्या तत्तत्-सम्प्रदायों के धर्माचायों और धर्मशास्त्रों के अनुसार मानी जाये। इसी तरह आप भारतीय शासन तथा सामाजिक व्यवस्था का एकदम पाश्चात्य ढंग में परिवर्तन करना चाहते हैं, यह भी भयंकर बात है। भारत की विशेषता वेद, उपनिषद, धर्मशास्त्र, दर्शन, रामायण और महाभारत से विदित होती है। मनु, याज्ञवल्क्य, शुक्र, बृहस्पति, कणिक, कौटिल्य आदि ने बड़ी गम्भीरता से यहाँ व्यवस्थाओं का निर्धारण किया है। उनका विचार तो अवश्य करना चाहिये।

यद्यपि आप लोगों के सामने शरणार्थियों की चिंता और देश रक्षा का प्रश्न सर्वाधिक है, तथापि यह विचार उन दिशाओं में लाभप्रद होगा। साथ ही जब आज ही विधान बन रहा है, केन्द्र तथा प्रांतों में सुधार के नाम पर सनातनी हिन्दुओं के धार्मिक,सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन की हत्या की जा रही है, तब उनके लिये भी सबसे महत्त्वपूर्ण अवसर यही है। अतः उनकी उपेक्षा उचित नहीं। हम लोग वस्तुतः आप का हित चाहते हैं। ध्यान उधर आकर्षित करने के लिये ही आन्दोलन चला रहे हैं। क्या हम आशा करें कि आप सहृदयता और उदारता के साथ हमारी बातों पर विचार

करके उचित घोषणा द्वारा हम लोगों को सन्तोष देगें और हम लोगों को आन्दोलन छोड़कर अपने सहयोग का अवसर दंगे ?

आपका
करपात्री

(मासिक सन्मार्ग काशी वर्ज ६ अङ्क २, मार्गशीर्ष, विक्रमी संवत २००४ से साभार उद्धृत)

● ● ●

**श्री नेहरू को पूज्य स्वामी करपात्री जी का पत्र—**

स्वस्ति श्री प्रधानमन्त्री नेहरू जी,

नारायण-स्मरण।

हिन्दू कोड सम्बन्धी २८ नवम्बर १६४६ के आप के वक्तव्य को मैंने गम्भीर वेदना और खेद से पढ़ा जिसमें घोषणा है कि यह बिल सरकार के प्रति विश्वास या अविश्वास का प्रश्न है। उसे अधिकतम बहुमत से स्वीकृत कराये जाने का प्रयत्न किया जायेगा, पर यदि ऐसा न हो सका तो सरकार उसे इसी रूप में कार्यान्वित करेगी। आप के इन प्रश्नों पर क्रमशः विमर्श करता हूं।

वर्तमान धारा सभा में हिन्दूकोड बनाने के लिए मतदाताओं की अनुज्ञा कभी नहीं प्राप्त की गई और न मांगी ही। ऐसे सामाजिक कानून के अंश को जिस पर मतदाताओं को अपनी सम्मत्ति प्रगट करने का कोई अवसर न मिला हो, सरकार के लिए विश्वास अथवा अविश्वास का प्रश्न बना देना वैधानिक अत्याचार को स्थिर करना ही है। शासनारूढ़ सरकार को अपने संकेत पर नाचने वाले पिट्ठू मिल ही जाते हैं, किंतु उन पिट्ठुओं द्वारा दी गई स्वीकृति कभी भी सार्वजनिक नहीं हो सकती और ऐसे संदिग्ध उपायों का आश्रय लेना नीतिमत्ता नहीं। आप की इस धमकी के दबाव से कि सर्वसम्भव समझौता न होने पर सरकार इसे इसी रूप में पास करेगी, हार्दिक सार्वजनिक स्वीकृति कभी सम्भव नहीं। हिन्दू-कोड-बिल, हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू समाज की व्यवस्था के मूल पर कुठाराघात है। इसने देश में तीव्र विरोध जागृत किया है: इसमें किसी को संदेह नहीं। प्रत्येक वर्ग के नर-नारी, धनवान-निर्धन, सभी ने खुल्लमखुल्ला इसकी निन्दा की है। सनातन धर्मी, आर्यसमाजी, सिक्ख, जैन आदि सभी मतों के अनुयायियों ने इसका संगठित विरोध किया है। हिन्दुओं के प्रति सरकार की सहानुभूति-शून्य नीति से देश भर में अत्यधिक क्षोभ है। स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रीय सरकार का सर्वप्रथम कर्तव्य गोवध को सर्वथा रोकना था। गौओं की हत्या हिन्दुओं के हार्दिक भावों को गहरी चोट पहुंचाती है। इन भावों की कठोर अवहेलना करते हुए सरकार ने न केवल गोवध जारी रखने की अनुज्ञा ही दी, प्रत्युत बम्बई में एक नया बूचड़खाना खोलने की भी अनुमति दी है। सरकार के इन, और, ऐसे ही कर्त्तव्य-शून्य एवं कर्त्तव्य-विरुद्ध कृत्यों से, जिनमें काश्मीर समस्या, उत्पीड़ित-समस्या और आर्थिक समस्या मुख्य है, जनता अत्यन्त क्षुब्ध है। आपको यह भी स्मरण होगा कि अप्रैल सन १६४७ में एक शांतिपूर्ण आन्दोलन 'धर्मयुद्ध' के नाम से चला था, जिसके उद्देश्यों में गोवधबन्दी, भारत-विभाजन का विरोध और अखण्डता की स्थापना तथा धार्मिक विषयों में सरकारी हस्तक्षेप न करना मुख्य थे। मथुरा
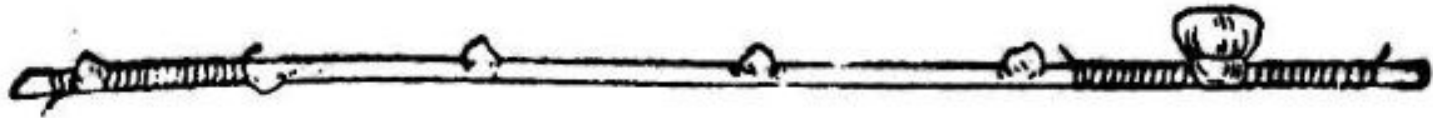
म्यूनिसिपिल कमेटी द्वारा गोवध बन्दी का प्रस्ताव स्वीकृत किये जाने और विशेषकर देश विभाजन-जन्य अपनी नवजात स्वतन्त्रता की शिशु सरकार की कठिनाइयों का ध्यान रखकर यह आन्दोलन स्थगित कर दिया गया। तब से सरकार के हाथ दृढ़ करने और गोवध बन्दी तथा हिन्दू कोड बिल के स्थगित करने की माँग वैधानिक रूप से सरकार के आगे रखने के लिए जनता को मैं प्रेरित करता रहा हूं। वैधानिक मार्गानुसार चलने का अनुरोध इसी विश्वास पर किया कि सरकार ऐसे मार्गों पर अवश्य ध्यान देगी और यदि सरकार हिन्दू कोड बिल रद्दकर गोवध बन्द कर दे तो मैंने स्वयं अपने आपको कांग्रेस प्रचारक के रूप में गांव-गांव घूमने को उपस्थित किया है। किंतु सरकार की वज्रतुल्य कठोर नीति ने, जिसे धारा सभा के आपके वक्तव्य ने प्रकट कर दिया, मेरे विश्वास को तीव्र धक्का लगाया है। क्या वैधानिक आन्दोलन का कोई लाभ है, जबकि सरकार वैधानिकता का कुछ मूल्य ही न समझती हो, और धर्म निरपेक्ष कही जाने वाली सरकार जनता के सबसे बड़े भाग के धार्मिक कानूनों में हस्तक्षेप करने को कटिवद्ध हो, एवं एक कामचलाऊ धारा सभा देश के करोड़ों लोगों के जीवन से सम्बद्ध धार्मिक विषयों में कानून बनाना अपना अधिकार मान लें ?

इसलिए मैं स्पष्ट व्यक्तिगत निवेदन आप से करता हूं कि जनता को मांग को स्वीकार करें और हिन्दू कोड बिल को लौटा लें तथा गोवध बन्द कर दें। मैं उन लोगों की करुण पुकार आप के कानों तक पहुँचा रहा हूं जो आप को प्यार करते हैं और जिन्होंने आपको इतने ऊँचे पद पर बैठाया है। मैं हार्दिक निवेदन करता हूं कि आप इस पुकार पर उचित ध्यान दें और इसके अनुकूल कारवाई करें। दुर्भाग्यवश आप ने कुछ नहीं किया तो अपने हृदय में गम्भीर निराशा रख मुझे जनता को शांतिपूर्ण अहिंसात्मक आन्दोलन करने का आदेश देने पर विवश होना पड़ेगा, जिससे लोकतन्त्र विरुद्ध धर्मनिरपेक्षतारहित और उत्तरदायित्व-शून्य सरकार के हृदय को जनता के कष्ट और तपस्या से पिघलाया जा सके। मैं यह पत्र अपने देश, अपनी सरकार और समस्त विश्व पर मंडराने वाली विपत्तियों के निवारण और सबके कल्याण की भावना से प्रेरित होकर आप को भेज रहा हूँ।

आपके ही देश की सेवा के लिए—

—करपात्री स्वामी

(सन्मार्ग मासिक वर्ष ११ अंक ४, माघ विक्रमी संवत् २००६ से उद्धृत)

❖ ❖ ❖

श्री स्वामी करपात्री जी को १६४८ में गिरफ्तार करके बनारस जेल में डाल दिया गया। आरोप था 'इनके भाषणों के शांति भङ्ग होने का भय है।' 'जन सुरक्षा कानून' के अन्तर्गत बिना मुकदमा चलाये, बिना आरोप-पत्र दिये कारागार में बन्द कर दिया गया। बनारस के मजिस्ट्रेट ने यह भी बतलाने की औपचारिकता नहीं समझी कि उनके आपत्तिजनक भाषण कब और कहाँ हुए थे। मजिस्ट्रेट द्वारा स्वामी जी को जो लिखित नोटिस मिली उसके उत्तर में जो पत्र महाराज ने बनारस सैन्ट्रल जेल से बनारस के जिला मजिस्ट्रेट मिस्टर सिन्क्लेयर डे को लिखा उसे यहाँ अविकलरूप से दिया जा रहा है—

"जनसुरक्षा विधान" की ५वीं धारा के अन्तर्गत दी गई आप की २१-२-४८ की नोटिस मुझे सेन्ट्रल जेल, बनारस में २३-३-४८ को प्राप्त हुई और उक्त नोटिस में दिये हुये निर्देश के अनुसार आप के समक्ष मेरा निम्नलिखित निवेदन है—

(१) मैं एक दण्डी सन्यासी हूँ और हिन्दू शास्त्रों के अनुसार ही मैं हिन्दू जनता को उपदेश देता हूँ। धर्म प्रचार के लिए मैंने एक 'धर्मसंघ' नामक संस्था स्थापित की है, जिसके लक्ष्य और उद्देश्य हैं– (क) धर्मवृद्धि (ख) अधर्म-निवृत्ति (ग) विश्वकल्याण (घ) प्राणिमात्र में सद्भावना।

(२) मेरे समस्त व्याख्यान और लेख उन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिये होते हैं। आप के नोटिस में लिखे गये कारण कि 'मेरे भाषणों में हिंसात्मक कार्य तथा शांति भङ्ग की आशंका है,' इससे मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। अवश्य ही मेरे भाषणों के विषय में कोई भ्रांतिपूर्ण भाव आप के हृदय में उत्पन्न कर दिया गया है।

(३) मेरे भाषण तथा लेख, जो धर्मसंघ के कार्यालय से प्राप्त होंगे, देखने से आपको विश्वास हो जायेगा कि मेरे भाषणों से कदापि हिंसात्मक तथा शांतिभङ्ग की मनोवृत्ति को उत्तेजना नहीं मिलती।

(४) मैंने सदा देशकालजन्य परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए 'धर्मसंघ' के आन्दोलन को चलाया। प्रयाग के 'धर्मसंघ-महाअधिवेशन' में ६-२-४८ को अपने भाषण में मैंने घोषित किया था कि अपनी सरकार से हमारी लड़ाई माता से दूध मांगने के लिये बच्चे की और पिता से गृह में सुविधा मांगने की लड़ाई है। सम्प्रति उत्पन्न विकट परिस्थिति पर ध्यान देते हुये हमने धर्मयुद्ध आन्दोलन कुछ काल के लिये स्थगित कर दिया है।

(५) जेल में मेरा बन्द रहना या बाहर रहना, दोनों ही मेरे लिये समान हैं, किंतु यह लाञ्छन कि 'मेरे भाषणों के द्वारा समाज में हिंसा प्रवृत्ति या अशांति बढ़ने की आशंका हो रही है, दुःखद और असह्य है। आप स्वयं विचार करें कि जिस व्यक्ति का व्रत ही विश्वकल्याण तथा प्राणिमात्र में सद्भावना है, उसके प्रति ऐसी शंका कि 'उसके भाषण से हिंसा और शांति भङ्ग को उत्तेजन मिलेगा'—कितना दुःखद है।

(६) यदि मनुष्य के पूर्ववत् विचार या कार्य से उसके भविष्य का कोई संकेत होता है, तो यह बतलाना आवश्यक समझता हूँ कि जब मेरा शांतिमय आन्दोलन दिल्ली में चलता था, जिसमें आन्दोलनकारियों ने घोर कष्ट सहन किया तथा कई एक व्यक्ति इसी में मर भी गये और देश-विदेश में इसका समर्थन भी होता रहा. ऐसी स्थिति में जब कोई शांति भङ्ग नहीं हुई, तब आन्दोलन स्थगित रखने की घोषणा के बाद शांति भङ्ग की शङ्का मेरे प्रति करना अत्यन्त अनुचित है।

(७) मेरा कथन भी विचारणीय है कि जिस कांग्रेस ने भाषण-स्वातन्त्र्य शासन के लिये देश में घोर आन्दोलन और बलिदान किया, उसी कांग्रेस के शासनाधिरूढ़ सरकार से भाषण स्वातन्त्र्य पर कुठाराघात तथा उसका अपहरण ही बड़ा दुःखद है।
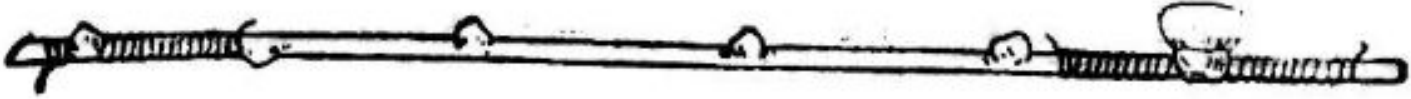
(८) अपने प्रचार कार्य में धर्मसंघ के लक्ष्यों से सम्बद्ध सरकारी नीति की आलोचना आवश्यकतानुसार मैंने अवश्य की है और इसी कारण से मेरे ऊपर ऐसा प्रतिबन्ध लगाया गया है—ऐसा विश्वास नहीं होता, क्योंकि वे आलोचनाएँ सर्वथा संयत और भाषण स्वातन्त्र्य-सीमा के अन्तर्गत थीं। तथापि यदि ऐसी आलोचना ही मेरे जेल में रखने का कारण हो, तो मैं अपनी स्वतन्त्रता से वंचित रह कर सदा ही जेल में रहना पसन्द करूंगा। अतएव मेरा अनुरोध है कि आप अपनी शंका जो मेरे सम्बन्ध में उत्पन्न की गई है, निर्मूल और भ्रांतिजन्य समझें और अपने आदेश पर पुनः विचार करें।

❋ ❋ ❋

: श्री हरि :

१४-४-५४

सम्मान्य श्री स्वामी जी महाराज,
सादर अभिवादन।

कई दिनों से आपको पत्र लिखने का विचार कर रहा था, आज लिख रहा हूं। आप से मिलने का मुझे कभी अवसर नहीं मिला। अस्पृश्यता-निवारण का प्रश्न भी उस सम्मान को मेरे हृदय से दूर नहीं कर पाया, जो आपके तपोमय आध्यात्मिक जीवन के प्रति बना हुआ है। मैं जानता हूं कि मुझसे कहीं अधिक ही आप के करुणा-विगलित हृदय में हरिजनों के प्रति प्रेम-भाव होगा। आप का जीवन विभिन्न शास्त्रों के अध्ययन से नहीं, किन्तु एकांत साधना और तपश्चर्या से बना है। मैं इस आशा का त्याग कैसे कर दूं कि एक दिन आप स्वयं ही पूर्वकाल के सन्त पुरुषों की भाँति हरिजनों को अपने हृदय से लगा कर और उनका हाथ पकड़ कर श्री विश्वनाथ-मन्दिर में ले जाएंगे? यह निवेदन मैं शास्त्रज्ञ स्वामी जी से नहीं, किन्तु ब्रह्मविहार करने वाले एक सन्त पुरुष से कर रहा हूं। मुझे विश्वास है कि आपमें पूर्व ऋषियों की भांति काल की गति को देखते हुये शास्त्र-ग्रंथों में आवश्यक संशोधन कर देने की भी शक्ति है। आप घोषणा कर दीजिये कि आगामी प्रदोष के दिन आप हरिजनों को स्वयं अपने साथ ले जा कर भगवान शिव का दर्शन और पूजन करायेंगे। आप धर्म-संशोधन के अधिकारी हैं, इसलिये आज इस पत्र द्वारा इतना निवेदन किया।

इस पत्र को मैं प्रकाशित नहीं कर रहा हूं, आवश्यकता भी नहीं है। यदि मेरे निवेदन को आप चरितार्थ करें और उचित समझें, तब अपने उत्तर के साथ और मुझसे पूछकर प्रकाशित करा सकते हैं।

आपका
हस्ता० वियोगी हरि
प्रधान मन्त्री

स्वामी करपात्री जी महाराज,
काशी

● ● ●

श्री हरिः

गंगातरंग, नगवा, काशी
दिनांक : २३-४-५४

स्वस्तिश्री प्रिय वियोगी जी
हरिस्मरणम् ।

आपका स्नेह-पत्र प्राप्त हुआ। आशा है आप स्वस्थ एवं प्रसन्न होंगे। बहुत दिन हुये ब्रजमाधुरी सार और विनयपत्रिका पढ़ने को मिली थीं। तभी से मैं आपके भावुक हृदय से परिचित हूं।

मन्दिर प्रवेश सर्वथा शास्त्रीय विषय है। किन्तु खेद है कि इस दृष्टि से आप लोगों ने कभी इस पर विचार नहीं किया। फलतः राष्ट्र को अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ा और पड़ रहा है। 'सन्मार्ग' द्वारा आप मेरी बातें अवश्य सुनते रहे हैं, किन्तु उस पर कभी अपने विचार प्रकट नहीं किये। जो हुआ सो हुआ, जहाँ तक मन्दिर-प्रवेश का लक्ष्य है, वह एक प्रकार से पूरा ही हो गया। देश के प्रायः सभी विख्यात मन्दिरों में हरिजनों का प्रवेश हो चुका है। श्री विश्वनाथ-मन्दिर आदि जैसे कुछ मन्दिर ही बचे हैं। यदि ऐसे कुछ मन्दिर शास्त्र-विश्वासी सनातनधर्मियों के लिए छोड़ दिए जाएँ, तो इससे हरिजनों की भक्ति में कोई कमी नहीं आती।

हरिजन बन्धु धर्माचरण में निरत हों, यह मेरे लिए सुख की बात है। श्री विश्वनाथ-मन्दिर के पूर्व वाले झरोखे को बड़ा बनवा कर सुन्दर व्यवस्था कर दी गई है। रही समानता की बात, तो उनके सन्तोष और सम्मान के लिये काशी के प्रमुख विद्वान, महाराज काशी-नरेश और हम लोग उसी झरोखे से दर्शन करने के लिये लिखित प्रतिज्ञा करने को तैयार हैं। उनके प्रति हम अपने हृदय का स्नेहभाव किस प्रकार व्यक्त करें। इस आधार पर जटिल समस्या सन्तोषजनक रीति से सुलझाई जा सकती है। विचार-विनिमय होने से उचित मार्ग निकाला जा सकता है।

कवियों, महर्षियों और सन्त-महात्माओं ने वेदादि शास्त्रों के आधार पर ही धर्म-ब्रह्म का साक्षात्कार माना है। वेद अपौरुषेय होने से भ्रम-प्रमाद-विप्रलिप्सा-करणापाट-वादि समस्त पुंदोष-कलंक-पंक शून्य हैं, अतः वे त्रिकालसत्य एवं अपरिवर्तनीय हैं। सर्वभूत हितपरायण उदारचेता सत्पुरुषों की यही सनातन मान्यता रही है। वेदोक्त धर्म की ही रक्षा और संस्थापना करने के लिये राम, कृष्ण आदि रूपों में भगवान का आविर्भाव हुआ है। प्राणिमात्र परमेश्वर की पवित्र सन्तान है। किसी की अवहेलना या अपमान करना परमेश्वर का ही अपमान है। स्वधर्मनिष्ठ भगवद्भक्त अंत्यज श्रेष्ठ है, स्वधर्म-विमुख भगवद्भक्ति शून्य ब्राह्मण भी निंद्य है। स्वधर्मच्युत भगवद्विमुख ब्राह्मण को नरकगामी होना पड़ता है। स्वधर्मारूढ़ भगवद्भक्त अंत्यज भी भगवद्धाम प्राप्त करता है। परन्तु सर्वत्र शास्त्रानुसार स्वधर्मनिष्ठा और भगवद्भक्ति अनिवार्य है। 'वर्णाश्रम निज, निज धर्म निरत वेद पथ लोग' (सन्त तुलसीदास) विनयशील, श्रद्धालु आस्तिकजनों की यह दृढ़ मान्यता है। शास्त्र के अनुशासनानुसार जीवनयापन करना सभी के लिये कल्याण का हेतु माना गया है। धर्मवेत्ता महापुरुषों का यही उपदेश होता चला आया है।
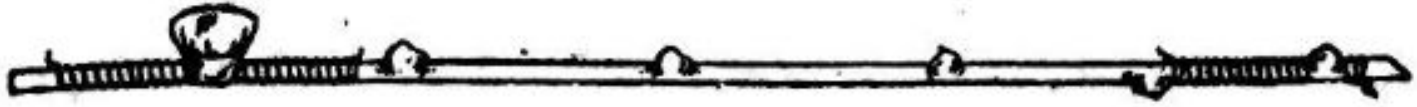
भक्तों का मुख्य कर्त्तव्य तो भगवदाज्ञा का पालन करना ही है। श्रुति और स्मृति के रूप में हमें साक्षात् भगवान् की आज्ञा प्राप्त होती है।

**"श्रुतिस्मृति ममैवाज्ञे यस्ते उल्लंघ्य वर्तते।**
**आज्ञोच्छेदी ममद्रोही मद्भक्तोऽपि न वैष्णवे ॥"**

स्वयं भगवान् कृष्ण ही कहते हैं "तस्माच्छास्त्रं प्रमाणंते, कार्याकार्य व्यवस्थितौ ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्त्तुमिहार्हसि।" फिर पाषाणमयी, धातुमयी, मूर्तियों को देवबुद्धि से पूजने की श्रद्धा शुद्ध शास्त्रानुसारिणी ही है, अन्यथा वह अन्धश्रद्धा होगी। अन्धश्रद्धा सर्वथा त्याज्य है। इस दृष्टि से जब शास्त्रानुसार ही मन्दिरस्थ मूर्ति के दर्शन पूजनादि का विधि-विधान मान्य है. तब उसका यथावत् पालन करना ही उचित और न्याय है। शास्त्रमर्यादानुसार हरिजन बन्धुओं के लिए भगवान् के दर्शन की व्यवस्था कर दी गई है। उनके वास्तविक हित के लिये हम लोग अपना अहित भी सहने को तैयार हैं। स्वयं आपका हृदय भी भक्तिभाव से परिपूर्ण है। जिस धर्म की संस्थापना के लिये. प्रभु अवत्तीर्ण होकर दण्डक वन में नंगे पांवों घूमते हैं, दण्डक के कण्टक उनके कोमल चरणारविन्दों में आविद्ध होते हैं, फिर उनके भक्त धर्मरक्षार्थ क्या करें?

शुभचिन्तक,
हस्ता० करपात्री (स्वामी)

●

**स्वामी जी और प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी का पत्राचार**

[ पूज्य स्वामी करपात्री जी पर हुये सांघातिक आक्रमण पर प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने जो खेद-प्रकाशपरक पत्र लिखा और पूज्य स्वामी जी ने उसका जो उत्तर दिया, वह निम्नलिखित है। —संपादक ]

**प्रधानमन्त्री का पत्र**

'तिहाड़-जेल की शोकमयी घटना सुनकर मेरे को आघात पहुंचा है। आपको तथा अन्य साथियों को चोटें आयीं, यह जानकर हमें खेद है तथा आप सभी के प्रति मेरी सहानुभूति है। मैं आप तथा घायल व्यक्तियों के स्वास्थ्य की कामना करती हूं। आशा है, घटना की देखभाल ठीक तरह से हो रही होगी।"

( ३-७-१९६७ )

●

**स्वामी श्री करपात्री जी का उत्तर**

"आपका ३ जुलाई का पत्र मिला। तिहाड़-जेल में हमारे और अन्य साधुओं के आहत होने की घटना सुनकर आपके मन को आघात एवं खेद हुआ तथा आपने सहानुभूति व्यक्त की इस सौजन्य का हम पर प्रभाव हुआ। कदाचित् आप अपनी आँखों से आहत सत्याग्रहियों को देख लेतीं, जो

जीवन भर के लिये बेकार कर दिये गये हैं, तो इससे आपको और आघात होता । इस घटना के जो भी जिम्मेदार हैं, उनकी यह अमानुषिकता एवं नृशंसता सर्वथा अनावश्यक थी । सत्याग्रही आध्यात्मिक कार्यक्रमों में रत थे ।

इस प्रकार की घटना की पुनरावृत्ति रोकने के लिये यह आवश्यक है और हम आशा भी करते हैं कि आपके द्वारा इस घटना की पूरी और निष्पक्ष न्यायिक जांच करायी जायेगी और जो भी दोषी सिद्ध हों, उन्हे समुचित दण्ड दिया जायेगा । हम सभी को यथार्थ सन्तोष तो तब होगा, जब आपके प्रयत्नों से गोमाता के प्राणों का संकट दूर हो ।''

श्री हरिः

राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चा

हिन्दू महासभा भवन, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली ।

अनन्त श्री विभूषित श्री मन्निम्बार्काचार्य वर्य्येषु श्री श्री जी महाभागेषु सर्वेश्वर स्मरणम् ।

आप श्री के पत्र से आपकी अगाध सहृदयता धर्म-तत्परता अनुभव करके बड़ी प्रसन्नता हुयी । इधर सब ठीक हैं, प्रयत्न चल रहा है, सफलता प्रभु पर ही निर्भर है । निर्वाचन आदि के सम्बन्ध में यदि सम्भव हो तो रामराज्य परिषद से अथवा स्वतन्त्र खड़ा करके उसका समर्थन किया जाय—इसीलिए संयुक्त मोर्चा भी बना है ।

करपात्री स्वामी

[ पूज्य आचार्य चरण का सलेमाबाद राजस्थान में बड़ा ही उच्च स्थान है, पाठक विचार करें कि किस प्रकार व्यक्तिगत पत्र लिख-लिखकर वह धार्मिक महापुरुषों को रामराज्य परिषद आदि में भाग लेकर धर्म रक्षार्थ प्रेरणा देते रहे । क्या ही अच्छा होता कि सम्पूर्ण भारतवर्ष के साधु-संन्यासी, महन्त, धर्माचार्य इस हिन्दू जाति को कर्मठता का पाठ पढ़ाने एवं धार्मिक गतिविधियों के साथ-साथ राजनीतिक हलचलों में भी सोत्साह भाग लेने के लिये प्रेरित करते तो आज भारत अध्यात्म-प्रधान विश्व कल्याणकारी राष्ट्र होता ]

श्री हरिः

जीवन् मुक्त महात्माओं पर शास्त्र का शासन नहीं होता 'एतस्य कृतकृत्य त्वाच्छास्त्रमस्मिन्निवर्त्तते'—प्रथम कोटि साधक यथाविधि श्रौत-स्मार्त्त कर्मों का अनुष्ठान करके उपासना द्वारा चित्त दोषों का निराकरण करता है, पुनः श्रवण मनन और निदिध्यास के द्वारा ब्रह्मात्म साक्षात्कार सम्पादन करता है । वह तब जीवन् मुक्त या स्थितप्रज्ञ होता है - इस क्रम से कर्म एवं उपासना में पूर्व मीमांसा, श्रवण में उत्तर मीमांसा, मनन में न्याय-वैशेषिक तथा निदिध्यासन में सांख्य और योगदर्शन
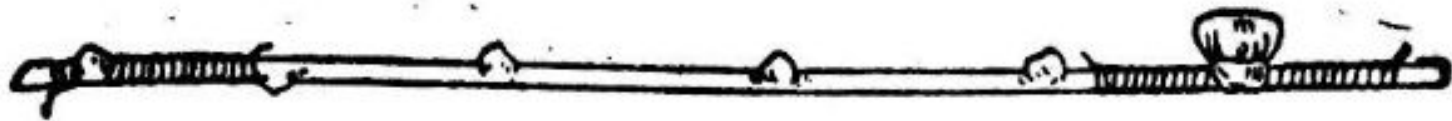
का कार्य समाप्त हो जाता है। इस तरह कृतकृत्य जीवन् मुक्त का अपना कुछ भी प्रयोजन न रहने से यद्यपि उस पर शास्त्र का नियन्त्रण नहीं होता, शास्त्र उससे निवृत्त हो जाता है तथापि पूर्वाभ्यास के कारण उससे यथायोग्य कर्म एवं उपासना होते रहते हैं। श्री मधुसूदन सरस्वती जी कहते हैं—

'अद्वेष्टृत्वादिवत्तेषां स्वभावो भजनं हरेः'। जैसे उनमें स्वभाव से ही अद्वेष्टृत्वादि गुण रहते हैं उसी प्रकार भगवान् का भजन करना भी उनका स्वभाव ही होता है। जगद्गुरु जी इसी कोटि के स्थितप्रज्ञ महात्मा थे।

करपात्र स्वामी
शिवरात्रि सं० २०३३ विक्रमी

□□

[ उक्त पत्र धर्म सम्राट् पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज ने ज्योतिष्पीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज के प्रति भावाभिव्यक्ति करते हुये धर्म संघ प्रकाशन मेरठ को स्वयं अपने हाथ से लिखा था।]

श्री हरिः

स्वस्ति श्री चरणसिंह जी नारायण स्मरण।

भगवत्कृपा से जन प्रतिनिधि सरकार केन्द्र में सत्तारूढ़ हुयी है। कांग्रेस शासन में गोवध-बन्दी के लिये कितने-कितने प्रयास किये गये यह सर्वविदित है। यद्यपि अनेक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय प्रश्न आज सरकार के सामने हैं जिनके निस्तारण में आप अहर्निश जुटे हैं, परन्तु कृषक वंशोत्पन्न होने के नाते आप गोवंश के महत्त्व को भली प्रकार समझ सकते हैं। पिछली सरकार कभी राजनैतिक तो कभी धार्मिक बखेड़े खड़े करके जन-जन की इस पुकार को निरन्तर तीस वर्षों से अनसुनी करती रही है, यह आपसे छिपा नहीं है। आज इस कृषि प्रधान देश भारत में एक किसान का बेटा स्वराष्ट्र मन्त्री के पद पर आसीन है' अतः किसानों के मन में गोवंश की रक्षा की आशा बलवती होना स्वाभाविक है। अन्य बड़ी-बड़ी समस्याओं के बीच गोवध बन्दी का प्रश्न विस्मृत न हो जाये, अतः यह पत्र लिखा जा रहा है।

आशा है अपने प्रभाव का समुचित प्रयोग करके भारत राष्ट्र से गो हत्या का कलंक मिटवाने में हार्दिक रूचि लेगें। इस विषय में विचारहेतु कुछ सुझाव प्रस्तुत हैं:—

(१) यद्यपि भिन्न-भिन्न प्रान्तों द्वारा गोहत्या बन्दी सम्बन्धी कानून बने हुये हैं, परन्तु उन पर कड़ाई से पालन नहीं किया जा रहा है। केन्द्र की ओर से प्रत्येक राज्य के मुख्यमन्त्री को आदेश भिजवाये जायें।

(२) अ० भा० स्तर पर संविधान में उल्लिखित ४८ धारा के अन्तर्गत सम्पूर्ण गोवंशहत्या निषेध कानून शीघ्र पारित करने का प्रयास किया जाये।
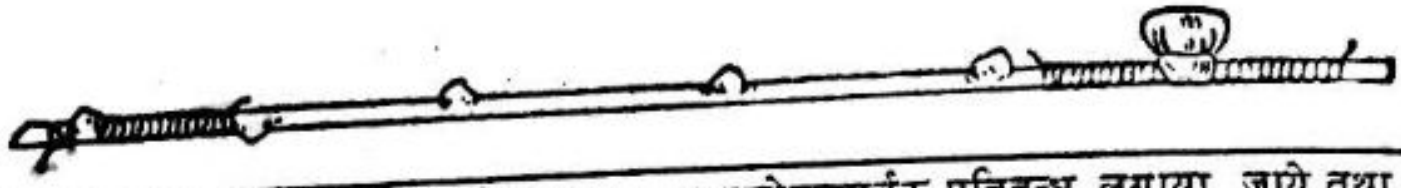
(३) देश से गोमांस निर्यात पर तत्काल कठोरतापूर्वक प्रतिबन्ध लगाया जाये तथा भारत सरकार द्वारा प्रकाशित निर्यात वस्तुओं की सूची में से 'गोमांस' का शब्द तत्काल निकाला जाए।

(४) विभिन्न प्रान्तों से कलकत्ता/बम्बई आदि स्थानों को भारी संख्या में गो इत्यादि दूध देने वाले पशु भेजे जाते हैं जो एक वर्ष के अन्दर दूध बन्द होते ही काट दिये जाते हैं। इस प्रकार राष्ट्र की बड़ी हानि हो रही है और घी दूध की मंहगाई बढ़ रही है। अतः इस पर रोक लगायी जाये।

(५) वर्तमान मशीनी कसाईखाने जिनमें बड़ी संख्या में दैनिक गोवंश काटा जाता है तुरन्त बन्द किये जायें तथा नये बनने वाले मशीनी कसाईखानों का निर्माण रोका जाये जैसा कि गोवा राज्य में नया मशीनी कसाईखाना करोड़ों की लागत से निर्माण किया जा रहा है।

(६) जिन राज्यों में गोहत्या बन्दी कानून बने हैं उन राज्यों से ऐसे राज्यों को जहाँ मशीनी बूचड़खाने स्थापित हैं जिनमें सहस्रों की संख्या में पशुधन नित्य कटने हेतु वहाँ भेजे जाते हैं—उस पर प्रतिबन्ध लगाया जाये तथा उनके पालन की व्यवस्था सम्बन्धित राज्य में ही की जाये।

नारायण स्मरण पूर्वक
करपात्री स्वामी

□□

**टिप्पणी:**—जनता सरकार के शासन काल में उक्त आशय के पत्र अनेक अन्य जन-नेताओं को स्वामी जी द्वारा पृथक-पृथक रूप से भेजे गये जिनमें गोवध बन्दी हेतु अनुरोध किया था। ग्रन्थ के कलेवर की दृष्टि से यहां सब पत्रों का प्रकाशन अशक्य है। अतएव उन महानुभावों के नाममात्र यहां देकर सन्तोष करना पड़ रहा है यथा :—

१- श्री मुरारजी देसाई प्रधानमन्त्री भारत सरकार।
२- श्री सुब्रह्मण्यम् स्वामी।
३- श्री चन्द्र शेखर अध्यक्ष जनता पार्टी, जन्तरमन्तर रोड नई दिल्ली।
४- श्री मन्नारायण अग्रवाल अध्यक्ष, गान्धी स्मारक निधि, वर्धा।
५- श्री राजनारायण स्वास्थ्य मन्त्री, नयी दिल्ली।

※ ※ ※

श्री हरिः

प्रयाग २५, जनवरी, १९७७

स्वस्ति श्री सन्त शरण वेदान्ती नारायण स्मरण।

ब्रह्मचारी जी को खूब अच्छी तरह कानूनी ढंग से पर्चा भरना चाहिये, फिर तुम्हें भी डमी कैन्डीडेट की हैसियत से पर्चा भरना चाहिये बाद में उठा लेना चाहिये। चम्पाबाई के यहाँ एक पं० छविनाथ ब्राह्मण रहते हैं वे भी खड़े होते हैं प्रयाग के आसपास से, उन्हें भी खड़ा करना चाहिये। बिहार से भी किसी को खड़ा करना चाहिये। इधर प्रयाग में परिषद के अध्यक्ष से भी वासुदेव शास्त्री

को वात करके उन्हें या किसी अन्य व्यक्ति को खड़ा करना चाहिये।

करपात्र स्वामी

[ रामराज्य परिषद की ओर से सन् १९५२ एवं १९५७, ७७ के चुनावों में प्रत्याशी खड़े किये गये थे। रात-दिन घूम-घूमकर महाराज जी ने व्यापक यात्राएँ भी की थीं, तथा प्रमुख व्यक्तियों को पत्र भी लिखकर भी प्रेरित किया था। श्री सन्त शरण वेदान्ती जी को प्रेषित ऐसे ही एक पत्र को यहां पाठकों की जानकारी हेतु दिया जा रहा है पाठक स्वयं देखें कि किस प्रकार स्वामी जी प्रत्याशियों के चयन में एवं उन्हें खड़ा करने में वीतराग संन्यासी होते हुये भी, जनकल्याण एवं धर्म भावना के प्रयोजन से स्वयं पत्र लिख-लिखकर उत्साहित करते थे। ]

श्री हरिः

ब्रह्मीभूत जगद्गुरु श्री शंकराचार्य अनन्त श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज अत्यन्त महत्वपूर्ण महापुरुष थे। शंकराचार्य पद ने उन्हें गौरवान्वित नहीं किया अपितु उन्होंने उस पद को गौरवान्वित किया। जैसे मठाम्नाय में लिखा है कि जो व्यक्ति सिंहासन को काँटा समझता हो वही उस पद का अधिकारी हो सकता है तो वास्तव में जीवन भर वे इसी भावना से उस पद को सुशोभित किये।

जगद्गुरु जी धर्म और आध्यात्मिकता की जीवन्तमूर्ति थे। आचार एवं विचार का उनमें अद्भुत समावेश था। चरित्रमय यह 'जगद्गुरुगौरव' स्मृति ग्रन्थ भगवत् चरित्र जैसा ही परम आदरणीय और पठनीय है।

स्मृति-ग्रन्थ का प्रकाशन करने वाले पं० श्री श्यामसुन्दर वाजपेई एवं उनके सहयोगी अत्यन्त धन्यवादार्ह हैं।

करपात्र स्वामी

[ रुग्ण होने के कारण 'जगद्गुरुगौरव' ग्रंथ के प्रकाशन समारोह में धर्म सम्राट स्वयं नहीं पधार सके थे। अपने प्रतिनिधि श्री ब्रह्म चैतन्य ब्रह्मचारी को पत्र लेकर काशी से मेरठ भेजा था। उसी पत्र को यहाँ यथावत् प्रस्तुत किया गया है। ]

श्री हरिः

धर्म संघ प्रकाशन मेरठ द्वारा 'जगद्गुरुगौरवम का प्रकाशन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। विभिन्न आचार्यों, सन्तों एवं विद्वानों के माध्यम से भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं धर्म ब्रह्म सम्बन्धी बहुत

सामग्रियों का इसमें संकलन हो सका है। इसमें जगद्गुरु स्वामी श्री कृष्ण बोधाश्रम जी के दिव्य चरित्रों का भी संकलन है, जो कि स्वयं में महत्त्वपूर्ण है। भगवत्-प्राप्त भगवद्भक्त साक्षात् भगवत् स्वरूप ही होता है, उनका चरित्र भगवच्चरित्र है। जैसे भगवच्चरित्र के चिन्तन का महत्व है उससे भी-अधिक भगवद्भक्त चरित्र चिन्तन का महत्व है।

"या निर्वृत्ति स्वनुभृतां तव पादपद्म ध्यानाद्भवज्जन कथा श्रवणे न वास्यात्। सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि। —श्री भागवते

करपात्र स्वामी

● ●

[ धर्म संघ प्रकाशन मेरठ द्वारा ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी श्री कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज की स्मृति में प्रकाशित स्मृति ग्रंथ 'जगद्गुरुगौरव' पर अपनी विचाराभिव्यक्ति करते हुये धर्मसम्राट ने उक्त स्वलिखित पत्र प्रकाशन को भेजा था जिसको अविकल रूप से यहाँ दिया गया है। ]

सन् ७७ में कांग्रेस सरकार के पतन के पश्चात केन्द्र में जनता सरकार बनी। तब स्वामी जी को आशा बंधी कि अब गोवध बन्दी हेतु केन्द्रीय कानून बन जायेगा। इसके लिए उन्होंने प्रयास भी किये, प्रतिनिधि मण्डल मिले, सभाएँ की तथा देश के भाग्यविधाता बने विभिन्न राष्ट्रीय स्तर के नेताओं को व्यक्तिगत पत्र भेजकर गोवध बन्दी की अपनी मांग पुनः प्रस्तुत की। इन नेताओं में भी श्री मुरार जी देसाई, प्रधानमन्त्री, श्री चरण सिंह वित्त मन्त्री, श्री अटल बिहारी बाजपेयी विदेश मन्त्री, श्री एच० एम० पटेल गृह मन्त्री, श्री राजनारायण स्वास्थ्य मन्त्री भारत सरकार एवं श्री चन्द्र शेखर अध्यक्ष जनता पार्टी सम्मिलित थे। इनके अतिरिक्त शासन के बाहर के प्रभावशाली महानुभावों को भी पत्र लिखकर स्वामी जी ने अनुरोध किया था कि वह सरकार पर अपने प्रभाव का प्रयोग करते हुए इस पुनीत कार्य में योगदान दें। सभी पत्रों का प्रकाशन यहाँ अभीष्ट भी नहीं है। कभी सम्भव हुआ और श्री महाराज के गत ५० वर्षों में विभिन्न व्यक्तियों, भक्तों, नेताओं, महात्माओं आदि को विभिन्न प्रसंगों एवं अवसरों पर लिखे गये पत्रों का संकलन किया जा सका तो उनका प्रकाशन पृथक से करने का प्रयास किया जायेगा। इस निवेदन के साथ थोड़े से इन पत्रों के प्रकाशन से ही पाठकगण सन्तोष करेंगे, ऐसा विश्वास है। ◻ ◻

## तृतीय खण्ड

# जाकी रही भावना जैसी

## वाङ्मयी उद्गार

## जाकी रही भावना जैसी

धर्मसम्राट् की जीवन जाह्नवी में अवगाहन करके, श्रद्धांजलियाँ समर्पण कर, कृतित्व व वक्तृत्व के पांडित्य व वैदुष्य द्वारा ज्ञानवर्धन कर पावन अमृत का रसास्वादन व अलौकिक आनन्दानुभूति पाकर; देश के मूर्धन्य धर्माचार्यों, सन्तों, विद्वानों, भक्तों, बुद्धिजीवियों, पत्रकारों व राजनीतिज्ञों ने जैसा जैसा उन्हें देखा, पाया, अनुमान किया उसको शब्दों द्वारा भाषा रूप दिया है, पढ़ें। आप अभिभूत हो उठेंगे कि एक व्यक्तित्व ने किस प्रकार अपना विचित्र प्रभाव छोड़ा है।

श्री हरिः

धर्म की जय हो

अधर्म का नाश हो

प्राणियों में सद्भावना हो

विश्व का कल्याण हो

हर हर महादेव

करपात्री हरिहरानन्द

स्वामी

"सर्वाधिष्ठान परब्रह्मतत्त्व है"—ऐसी बुद्धि होने से उसकी प्राप्ति के लिये धर्म एवं तद्बोधक शास्त्र का अवलम्बन करना होता है। तदर्थ पाशविक उच्छृङ्खल व्यापारों का परित्याग करना ही पड़ेगा। ऐसी स्थिति में अधर्म जिससे शूकर-कूकरादि योनियों की प्राप्ति होती है, का परिवर्जन होगा। धर्म के सेवन से दिव्ययोनियों की प्राप्ति होती है। ब्रह्मनिष्ठ होने से प्राणी ब्रह्म हो ही जाता है। ईश्वर और परलोक में विश्वास रखने वाला व्यक्ति अत्याचार, अन्याय और अधर्म से डरता है। जब साधारण व्यक्ति के सामने भी पाप करते हुए संकोच करता है, तब सर्वान्तरात्मा, सर्वसाक्षी, सबके हार्दिक हाव कुभाव के भासक भगवान् से कौन से दोष एवं पाप छिपाये जा सकते हैं? इस दृष्टि से आस्तिकवाद ही विश्वशान्ति एवं सुव्यवस्था की स्थापना कर सकता है।
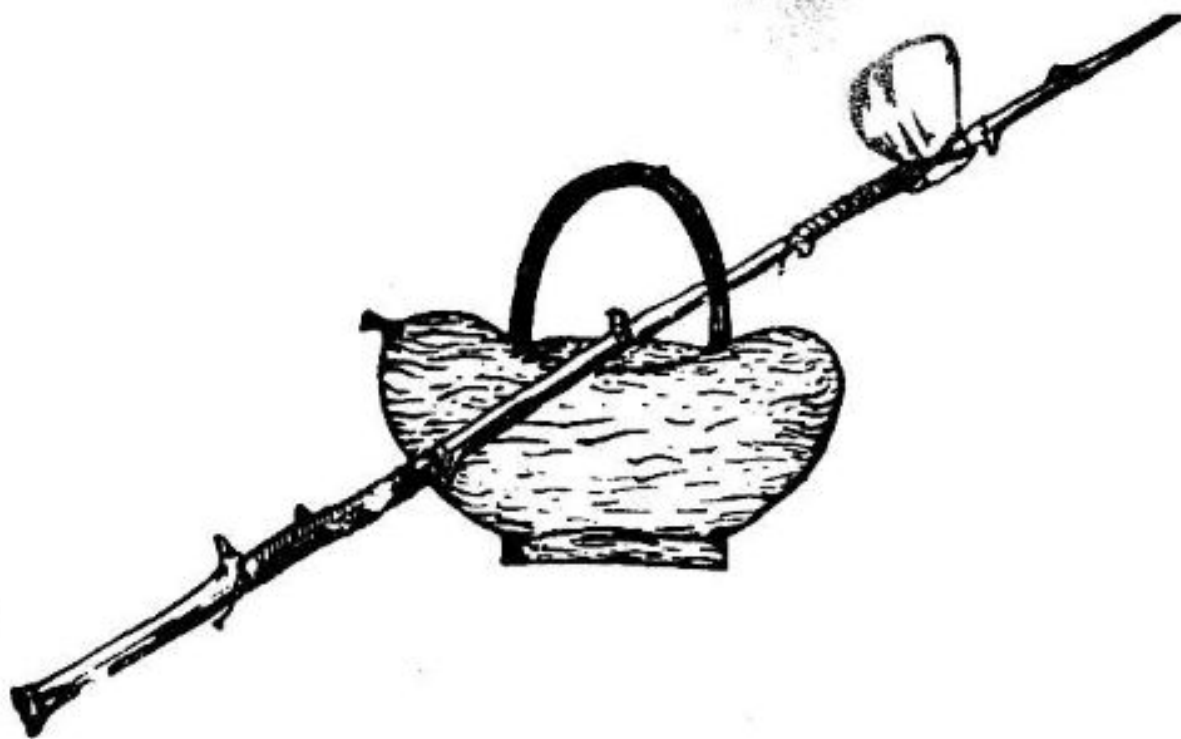
# "इस युग के निर्भीक एवं तेजस्वी सन्त स्वामी श्री करपात्री जी"

अनन्त श्रीविभूषित श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीस्वामी अभिनव विद्यातीर्थ जीमहाराज,
दक्षिणाम्नाय, श्री शारदापीठम् शृंगेरी (कर्नाटक)

"परमहंस अनन्त श्री विभूषित हरिहरानन्दसरस्वती जी बड़े ही विद्वान् और सनातन धर्म के नेता थे। वीतराग होकर एक पात्र भी अपने पास न रखकर करतलभिक्षा करते रहने के कारण उनका नाम करपात्री जी पड़ा। उन्होंने सारे भारत में हमेशा यात्रा करते हुये अपने धर्म प्रवचनों द्वारा जनता में सनातन धर्म के प्रति श्रद्धा जगायी। धर्म-संघ स्थापित करके सनातन धर्मावलम्बियों में एकता सम्पन्न करने का प्रयत्न किया। नास्तिक वाद निरसन के लिये अनेक ग्रंथ लिखे। लोगों में भगवद्भक्ति जगाना आवश्यक जानकर भक्तिपरक ग्रंथ भी लिखे जो भगवत्तत्व पर जिज्ञासा रखने वालों को बड़े ही उपकारक हैं। वेद पर असांप्रदायिक लोगों से किये गए आक्षेप और मीमांसा शास्त्र के विरुद्ध अर्थों का प्रमाण सम्मत रीति से निराकरण कर वेदों का शास्त्रीय रीति से अर्थ समझाने के लिये श्री सायणभाष्य का समर्थन करते हुये वेदार्थ पारिजात लिखकर धार्मिक जनता को बड़ा बल दिया। आपने अपना सारा जीवन भगवती को उपासना और सनातन धर्म के पुनरुत्थान में लगाकर लोगों के हृदयों में विराजते रहे अब ब्रह्मीभूत होने पर भी वैसे ही विराजते हैं। उन्होंने सनातन धर्म की रक्षा के लिये जो कार्य किया उसे भुलाया नहीं जा सकता। स्वामी करपात्री जी इस युग के निर्भीक तथा एक तेजस्वी सन्त थे। सनातन धर्म जगत को उनसे प्रेरणा लेकर धर्म की रक्षा के लिये तत्पर रहना चाहिये।

□□

[ 'भारत के दीन, हीन, दरिद्र, असंगठित और परतन्त्र होने का एकमात्र कारण उसकी निर्बलता है। अतः यदि शक्ति की उपासना की जाये तो थोड़े ही दिन में इन सभी दुरवस्थाओं का निराकरण हो सकता है। अदृष्ट शक्ति की सत्ता में पूर्ण निष्ठा रत रहते हुये धर्म संघ के संकल्पानुसार माँ दुर्गा की उपासना ही वर्तमान समय में त्राण का उपाय है। ]

करपात्र स्वामी

# विश्व की असाधारण ज्योति

—अनन्त श्रीविभूषित श्रीमज्जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीस्वामी निरञ्जनदेव तीर्थ जी महाराज,
पूर्वाम्नाय, गोवर्धन पीठ, जगन्नाथ पुरी (उड़ीसा)

विश्ववंद्य यतिचक्र चूड़ामणि भारतीय हृदय सम्राट परमहंस परिव्राजकाचार्य अनन्त श्री स्वामी श्री करपात्री जी महाराज विश्व की अनन्य असाधारण विभूति थे। एक व्यक्ति लेखक है, प्रवचन शास्त्रार्थ इत्यादि में पटु नहीं है, शास्त्रार्थ में दक्ष है किन्तु प्रवचन, भाषण और लेखन में नहीं है। यह सब करने वाला श्रवण, मनन, निदिध्यासन पराभक्ति और स्वधर्मानुष्ठान में भी निष्ठ हो ऐसी एक ही मूर्ति के दर्शन स्वामी जी में होते थे। उन श्री स्वामी जी के एक ही व्यक्तित्व में प्रौढ़ पाण्डित्य की पराकाष्ठा थी अद्भुत शास्त्रार्थ निपुणता थी। लेखनी के भी वे अद्वितीय धनी थे। उनकी लिखी एक-एक पुस्तक में शास्त्रीय सिद्धान्तों का सार निचोड़ा हुआ पाया जाता है। क्या भक्ति क्या ज्ञान क्या वैराग्य, इन तीनों मार्गों में गंगा, यमुना, सरस्वती की तरह उनकी, वाणी, लेखनी, शास्त्रार्थपटुता इत्यादि का संगम था, प्रौढ़ अध्यात्मविद होते हुये भी विश्वकल्याण से ओतप्रोत उनके पावन हृदय की पवित्र भावना थीं। वेद शास्त्रादि चतुर्दश विद्या उनकी वाणी पर नृत्य करती हुई सी दिखाई देती थी। हिन्दू धर्म, सभ्यता, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू आचार-विचार, वेद शास्त्र, पुराण, इतिहास, रामायण महाभारतादि प्रतिपादित सिद्धान्तों और गोमाता की रक्षा के लिये प्राणार्पण पर्यन्त बलिदान की भावना से ओतप्रोत उनका अन्तःकरण था। यदि हिन्दू जाति ने अपने नेता को नहीं पहचाना तो भविष्य उसका अन्धकारमय है और पहचान लिया तो प्रकाशमय ज्योतिपुंज है।

जैसे सूरदास के राह पर लाने के बाद श्रीकृष्ण ने उन्हें छोड़ दिया था, उसी प्रकार महाराज श्री हमें राह पर ला कर हमें छोड़ कर चले गये हैं परन्तु मेरी भावना है कि महाराज श्री अभी भी हमारे बीच में हैं क्योंकि अवतारों का शरीर पंचभूतों से निर्मित नहीं होता।

जिस समय पाश्चात्य सभ्यता के झंझावात में हिन्दू समाज भटक रहा था, महाराज श्री ने उसका हाथ पकड़ कर उसे नयी राह बतायी। एक बार महामना मदन मोहन मालवीय भागवत से रास पंचाध्यायी को निकालने के लिए उतावले थे। महामहोपाध्याय पं० गिरधर शर्मा ने उन्हें सलाह दी कि वे महाराज श्री से मिलने के बाद ही कोई निर्णय करें पर जब महामना महाराज श्री के पास आये, उनके स्वरूप से इतने प्रभावित हुये कि उक्त विषय पर चर्चा करने का साहस उनमें नहीं हुआ।

लगभग ५६ वर्ष पूर्व प्रयाग मेले में जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज ज्योति पीठाधीश्वर से करपात्री जी महाराज की प्रथम भेंट प्रयाग में हुयी थी। उस समय महाराज श्री ब्रह्मचारी थे पर सनातन धर्म का प्रतिपादन उन्होंने जिस ओजस्विता के साथ किया उससे शंकराचार्य महाराज को कहना पड़ा मेरे बाद सनातन धर्म का प्रतिपादन यदि कोई व्यक्ति कर सकता है तो यही युवक कर सकता है। यद्यपि वागभट्ट सी भाषा में उस समय महाराज श्री ने अपना पक्ष प्रति-

पादित किया था और ७५ प्रतिशत जनता उन्हें समझने में असमर्थ हो रही थी फिर भी उनके भव्य मुख-मण्डल और भाषा की प्रवाहिता को देखकर पूरी जनता उनके दर्शन के लिये खड़ी हो गयी। महाराज श्री के बारे में अब मैं क्या लिखूं प्रतिभा कुंठित हो गयी है, मेधा विचार शक्ति से शून्य हो गयी है, भक्ति निराश्रित घूम रही है। फिर भी महाराज श्री के अन्तिम आदेशों को पालन तो करना ही होगा। उनका आदेश था—गोमाता की रक्षा, अनादि काल से चले आ रहे सनातन धर्म, हिन्दू संस्कृति को पल्लवन में पूरी तरह डटे रहना आग लगे या ओला पड़े। जरूरत पड़े तो फांसी के तख्ते पर भी झूल जाना। आप सब महाराज श्री के बताये हुये मार्ग पर चलने का संकल्प लेकर महाराज श्री के आदेशों को पूरा करें।
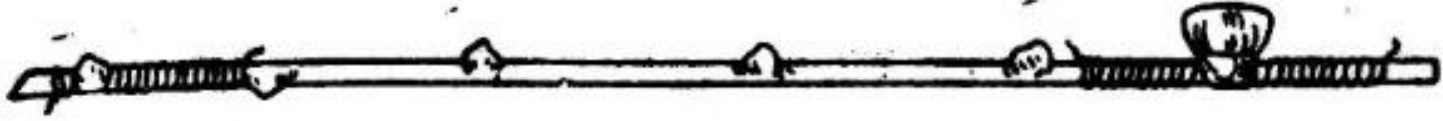
●●

[ 'बौद्धावतार के समय अनधिकारी शूद्रों द्वारा यज्ञयागादि द्विजोचित वैदिक कर्म अधिकाधिक होने लगे थे। बिना वैदिक कर्मों के खण्डन के उसका सुधार सम्भव नहीं था। परन्तु वेद और तदुक्त कर्मों के खण्डन का परिणाम ऐसा भयानक हुआ कि अधिकारी भी वैदिक कर्मों से उपरत हो गये। अतः भूतभावनविश्वनाथ ने आद्य श्रीशंकराचार्य जी के रूप में अधिकारियों के प्रवृत्ति के लिये अवतार धारण किया और वेदों और तदुक्त कर्मों का मण्डन तथा संस्थापन किया। इस प्रकार सभी अवतारों के प्रयोजन हैं ही परन्तु वेदमूलक जिनके आदेश-उपदेश हैं—वही मान्य हो सकते हैं।" ]

करपात्र स्वामी

# लोक-कल्याणरत महामनीषी

—अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्द जीसरस्वती महाराज, ज्योतिष्पीठ, उत्तराम्नाय, बदरिकाश्रम (उ० प्र०) द्वारका शारदा पीठ (गुजरात)

धर्म सम्राट पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज का प्रादुर्भाव उस समय हुआ था जब भौतिकवाद अपने प्रखर रूप में भारतीयता, आदर्श जीवन मूल्य तथा धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को ग्रसित करने के लिये तैयार बैठा था। भगवान शंकराचार्य के अवतरण तथा पूज्य स्वामी जी महाराज के प्रादुर्भाव के अन्तराल में ऐसी विकट परिस्थितियाँ पैदा हो गयी थीं जो सनातन धर्म को अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने से रोकने का प्रयास कर रही थीं। पूज्य महाराज जी ने भौतिकवाद के इन प्रबल झंझावातों से सनातन धर्म को मुक्त कर देश में धार्मिक एवं आध्यात्मिक वातावरण की सर्जना की, धार्मिक पुनर्जागरण का वातावरण प्रस्तुत किया, श्रौत स्मार्त पद्धतियों से परिपूर्ण यज्ञों की परम्परा का श्रीगणेश किया, तथा शास्त्र एवं शास्त्रीयता की मर्यादा को उच्चतम शिखर पर पहुंचा दिया। अद्वैत दर्शन के वे नव व्याख्याता थे। दण्डी संन्यासी के रूप में अद्वैत दर्शन का प्रचार-प्रसार कर देश के लोगों को मानसिक तथा रागात्मक अनुभूतियों को तीव्रता प्रदानकर उन्होंने शताब्दियों से उपेक्षित दण्डी समाज की ओर लोगों का ध्यान अनायास ही मोड़कर उसे अत्यन्त ही सम्मानपूर्ण स्थान समाज में प्रदान कर दिया। आज समाज में दण्डी संन्यासियों को जो महत्ता प्राप्त है, शंकराचार्यों को जो प्रमुखता मिली है उसका सारा श्रेय पूज्यचरण को ही है।

सर्ववेद शाखा सम्मेलनों के माध्यम से उन्होंने देश में वैदिक धर्म की पुनर्स्थापना की। वेदों की अपौरुषेयता, उनका प्रामाण्य तथा उनकी सनातन उपयोगिता को सिद्ध कर उन्होंने वेदों के प्रति लोगों में श्रद्धा उत्पन्न की, शास्त्रीय पद्धति को जीवनयापन का मार्ग बतलाया तथा सनातन धर्म की ज्योति को सदैव के लिये आलोकित कर दिया। वे साक्षात् शिव थे, उन्हें पूजा करने को रुद्राक्ष की माला धारण कर भस्म लगाने की तथा अन्य उपासना करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। उन्होंने लोक कल्याण का महान व्रत लिया था। उन्हें अपने मोक्ष की चिन्ता नहीं थी। लोक कल्याण में रत उन महामनीषी को चिन्ता थी तो करोड़-करोड़ लोगों को दुःखों से मोक्ष दिलाने की चिन्ता थी। अपने उपदेशों व्याख्यानों, पुस्तकों तथा पूजन पद्धतियों से लोगों का ध्यान भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर मोड़कर उन्होंने इस दिशा में विशेष सफलता प्राप्त की। लोगों में अनुकरण की प्रवृत्ति अधिक होती है। उन्हें स्वयं पूजा करते देख लोग उधर आकृष्ट होंगे, इसी ध्येय से वे घण्टों पूजा में लिप्त रहते थे, अन्यथा आप्तकाम, पूर्णकाम, निष्काम महामनीषी को इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी।

सम्पूर्ण भारतीय विद्याओं के वे कोष थे। भारतीय दर्शन का कोना-कोना उन्होंने झांक लिया था। भारतीय संस्कृति में समन्वय की जिस परम्परा का आद्य शंकराचार्य जी ने श्रीगणेश किया था, पूज्य महाराज श्री ने उसे सम्पूर्ण भारतीयों के जीवन दर्शन के रूप से परिणत कर दिया।

उनके ग्रंथों की एक लम्बी परम्परा है। राजनीतिक दर्शन के उद्धारक के रूप में 'मार्क्स-

"भगवान् का सगुण; निर्गुण दोनों रूपों का कर्णरन्ध्रों से ही हृदय में प्रवेश होता है। भगवान् के मधुर मनोहर सौन्दर्य्यादिगुणगणों के श्रवण से निर्मल; विशुद्ध गंगाजल के अखण्ड प्रवाह की तरह द्रुत मानसवृत्ति प्रवाह का श्री भगवान की ओर चल पड़ना ही भक्ति है अथवा भगवान् के दिव्य गुण-गणों के श्रवण मात्र से लाक्षा की भाँति अत्यन्त द्रुत स्वच्छ अन्तःकरण में भगवान् की परम मनोहारिणी मंगलमयी मूर्ति का अंकित होना ही भक्ति है। इसका मूल कथा-श्रवण है।"
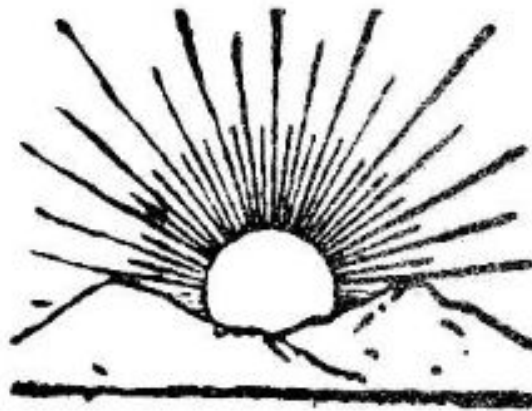
वाद और रामराज्य' तथा वेदों की अपौरुषेयता के सम्बन्ध में वेदार्थ पारिजात उनका अन्यतम शास्त्रीय ग्रंथ है। वेदार्थ पारिजात आने वाले हजारों वर्षों तक लोगों को वैदिक परम्परा की ओर उन्मुख होने के लिये अनुप्राणित करता रहेगा।

अगाध विद्वत्ता एवं कर्मठव्यक्तित्व के साथ-साथ उनका योगी और भक्त का रूप अत्यन्त प्रखर था। उनके हृदय में सदैव करुणा का सागर उमड़ता रहता था। वे सबका कल्याण चाहते थे। एक सच्चा भक्त यही चाहता भी है। भगवान की लीलाओं का वर्णन करते समय जिन जिन नये ललितात्मक भावों की उद्भावना वे करते थे, उस लीला के साक्षात् दर्शन के बिना वह सम्भव ही नहीं था। इसीलिये हम उन्हें पूर्ण अवतारी तथा शंकर स्वरूप मानते रहे हैं। आज भी हमारी यह धारणा है कि वे घट-घट में व्याप्त हो गये हैं। प्रत्येक व्यक्ति की अन्तरात्मा में उनका दर्शन होता है और उनके दिखाये मार्ग पर चलने की प्रेरणा एवं शक्ति उन्हीं के चरणों के स्मरण से हो सकती है।

गत वर्ष जब वे गम्भीर रूप से अस्वस्थ हुये थे तो देश के करोड़ों लोगों को धर्म की रक्षा की चिन्ता होने लगी थी। वे स्वस्थ हो गये, अपनी ज्ञान तन्तुओं को उन्होंने और मुखरित कर दिया तथा सबको यही आदेश दिया था, गोमाता की रक्षा सनातनी मूल्यों का संरक्षण, हिन्दू संस्कृति की रक्षा तथा आध्यात्मिकता के लिए सदैव प्रयासरत रहना चाहिये। आग लगे या ओला पड़े, जरूरत पड़े तो फांसी के तख्ते पर भी झूलना पड़े तो भी उक्त मूल्यों के पल्लवन में डटे रहना चाहिये।

ग्रहण के अवसर पर हम उनके दर्शनार्थ आये थे। उस समय उनका परब्रह्म स्वरूप साक्षात् प्रतिभासित हो रहा था। हमने यह जिज्ञासा की थी कि क्या वे मृत्यु का वरण कर रहे हैं उन्होंने सकारात्मक उत्तर दिया था। हमको लगा कि भारतीय धर्म मंच के मनस्वी नायक परम पूज्य महाराज श्री अब उत्तरायण की प्रतीक्षा कर रहे हैं और अन्ततः हुआ भी यही। २० जनवरी १९८२ को उन्होंने अपने अत्यन्त अन्तरंग श्री मारकण्डेय जी ब्रह्मचारी को बुलाकर क्षेत्र संन्यास का संकल्प लिया, वेदों के भाष्य के बारे में चर्चा की तथा ७ फरवरी १९८२ को भगवान शंकर ने उन्हें आत्मसात् कर लिया। यह अद्भुत बात है कि उन्होंने रविवार को ही अवतार लिया था और रविवार को ही परम निर्वाण प्राप्त किया। यह भी एक आश्चर्यजनक बात है कि माघ के महीने में केदारखण्ड में चतुर्दशी के दिन इन्होंने अपना शरीर त्यागा और उनकी षोडसी महाशिवरात्रि को ही पड़ी। यह उनके दैवी गुण का परिचायक है। हम उनके मार्ग पर चलकर उनके आदेशों को कार्य रूप में परिणत कर सकें यही उन पूज्य चरणों से आज भी हमारी प्रार्थना है।

●●

# सनातनधर्म के दिव्य भास्कर स्वामी करपात्री जी

अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर "श्री श्री जी"
श्रीराधा सर्वेश्वरशरणदेवाचार्य जी महाराज
अ० भा० श्री निम्बार्काचार्य पीठ, निम्बार्क तीर्थ (सलेमाबाद) अजमेर (राजस्थान)

अनादिवैदिक सनातन धर्म जगत् के परम देदीप्यमान प्रखर प्रकाश पुञ्ज परम दिव्य भास्कर अनन्त श्रीविभूषित धर्म सम्राट स्वामी श्री करपात्री जी महाराज का पवित्रतम उज्ज्वल जीवन वैदिक मर्यादा, वैदिक परम्परा, वैदिक संस्कृति, वैदिक आचार, वैदिक अनुष्ठान, वैदिक धर्म संरक्षण, सुर भारती संस्कृत भाषा के अभिवर्द्धन, गो-विप्र-परित्राण, सात्विकयज्ञानुष्ठान, वर्णव्यवस्था, श्रुति-स्मृति-पुराणादि शास्त्र प्रतिपादित —शुद्ध विधि, देवमन्दिर मर्यादा संरक्षण आदि-आदि के प्रचुर प्रचार-प्रसार में ही प्रतिपल प्रवृत्त रहता था।

श्री स्वामी जी महाराज शास्त्र विपरीत तत्त्वों का अपने प्रबलतम तर्कों से वेद-वेदान्तादि सच्छास्त्रों के अगणित उद्धरणों से अपने वैदिक सिद्धांत की सम्पुष्टि करते हुए जिस प्रकार खण्डन करते उससे विरोधी तत्त्व हतप्रभ होकर एकमात्र पलायन का ही अवलम्ब लेते। उनकी असीम प्रतिभा, विलक्षण वैदुष्य, धर्मतत्परता, विद्वत्समाज को आकृष्ट किये बिना नहीं रहती। विरोधी जन भी उनकी प्रखर ऋतम्भरा प्रज्ञा के सन्मुख सदा ही नतमस्तक रहते थे। निरन्तर प्रचण्ड तपश्चर्या उनके आदर्शमय उदात्त जीवन का स्वाभाविक धर्म था। इतने प्रकाण्ड वैदुष्य के साथ उनमें कितना दैन्य, सारल्य, माधुर्य्य था जिसका प्रत्यक्षदर्शन उनके पार्श्ववर्तीजन तथा सम्पर्क में आने वाले मेधावी महानुभाव करते थे।

श्रीमद्भागवत के रासपञ्चाध्यायी जैसे गूढ़तम विषय पर जब श्री स्वामी जी की सुधावर्षिणी मधुर वाणी निर्झरित होती तो उस क्षण समग्र भावुक श्रोतागण श्री वृन्दावनधाम की निर्मलनिकुञ्जों में अपने आप को पाते। कितना मधुरातिमधुर दिव्यातिदिव्य उनका वह परम मनोहर मञ्जुल सरस प्रवचन होता, उस समयन केवल श्रोतावृन्द ही अपितु स्वयं श्रीस्वामीजी महाराज भी प्रेमोद्रेकमें सर्वेश्वर वृन्दावन विहारी श्यामाश्याम प्रियालाल श्री राधामाधव प्रभु की ललित लीलामृत-सिन्धु में आप्लावित हो जाते और उनके नेत्रों से अश्रु विन्दुओं की धारा अविरल रूप से बह पड़ती। उस समय रसिकों को ऐसी अनुभूति होने लगती — कि कहीं ऋषिरूपा या ऋचारूपा किसी व्रजगोपाङ्गना ने ही रसिकजनों को उल्लसित करने के लिये उनको श्रीयुगललीलाविलासरससिन्धु में आप्लावित करने हेतु ही विलक्षण विचित्र परिव्राट् के स्वरूप को धारण किया हो। कभी-कभी तो उस लोकोत्तर असमोर्द्ध नित्यनवलीला विलासरस के पान कराने में इतनी तन्मयता दृग्गोचर होती कि जिससे उनकी मधुर रसना से भगवती सरस्वती की अजस्र धारा प्रवाहित होते हुए रसिक महानुभावों के अन्तर्मानस को आन्दोलित उद्वेलित कर देती फलतः रसिकजन भावविभोर होकर जय हो जय हो की मञ्जुलमयी मधुर ध्वनि

करते हुए परम पुलकायमान हो उठते । यथार्थ में उनकी दैनन्दिनी जीवनचर्या इतनी सुन्दरतम एवं गरिमापूर्ण थी जिसके अवलोकन मात्र से ही भावुक साधकजनों को स्वत ही मार्गदर्शन मिल जाता ।

अखिल भारतीय श्री निम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्क तीर्थ (सलेमाबाद) किशन गढ़ (राजस्थान) में वि० सं० २०३१ चैत्रारम्भ में जब अ० भा० विराट् सनातन धर्म सम्मेलन हुआ, उसमें आपने अनेक धर्माचार्य, सन्त, महन्त, मण्डलेश्वरों, विद्वत्समूह एवं अपार जनसमूह को जो उद्बोधन दिया वह तथा श्रीमद्भागवत के रासपञ्चाध्यायी का कथा प्रवचन भी सम्मेलन स्मारिका एवं टेपयन्त्रों में सुरक्षित है । जब-जब भी यथावसर भावुक समाज आपके इन वचनों को पढ़ते तथा सुनते हैं वे आत्म-विभोर हो जाते हैं ।

श्री करपात्री जी महाराज ने समग्र गोवंश-रक्षा हेतु गोहत्या-निरोध के लिये जो महान प्रयत्न किया वह भारत के धार्मिक इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अङ्कनीय है । आपके सर्वोत्कृष्ट नेतृत्व में सम्पूर्ण भारत की धर्मप्राण जनता ने जो महनीय प्रेरणा प्राप्त कर गोरक्षा शुद्ध-सात्त्विक रूप से प्रबल सत्याग्रह-आन्दोलन को स्वस्थ दिशा ली जो ७ नवम्बर १६६६ (दिल्ली) में प्रदर्शित अभूतपूर्व विराट प्रदर्शन सभी को आपके अप्रतिम वर्चस्व का परिज्ञान करा रहा है । गोरक्षार्थ अनेकों बार असह्य कारागृह (जेल) यातना आपने सहकर धर्म का स्वरूप दरशाया ।

नाना मत-मतान्तरों के शास्त्रों का भी आपका अकल्पनीय गम्भीर अनुशीलन था। जिस समय आप उनके शास्त्रों पर विवेचनापूर्ण प्रवचन करते तो उन मतों के अनुयायी विद्वज्जन आपके सार्वभौम ज्ञान एवं प्रगाढ़ वैदुष्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते थे । श्रीरामचरितमानस पर भी जब आप का मनोमुग्धकारी प्रवचन होता तो कितने ही मानस मर्मज्ञ रामायणी विद्वज्जन आपके ओजस्वितापूर्ण रहस्यमय प्रवचनों को श्रवणकर आश्चर्यचकित हो जाते ।

धार्मिक जागृति के लिये आपने "धर्मसंघ" नामक संस्था की स्थापना की । धर्म साक्षेप राजनीति हो तदर्थ आपने 'रामराज्यपरिषद' का घटन किया । भारत की अखण्डता की उदात्त भावना आपने प्रत्येक जनमानस में प्रेरित कर भारत सरकार को राष्ट्र की अखण्डता के स्थिरत्व के लिये विविध रूप से उद्बोधन दिया । हिन्दू कोड बिल निरोध के लिये आपने प्रबल प्रयास किया । मठ-मन्दिरों पर सन्त-महात्माओं पर आने वाली दुरुह समस्याओं के निराकरण के लिये किया गया उच्चतम प्रयत्न आप की अपूर्व निष्ठा का द्योतक है । विक्रमाब्द २००७ के अधिक आषाढ़ मास में जगन्नाथपुरी (उड़ीसा) में सन्त-महात्माओं पर सरकार द्वारा किया गया लाठी प्रहार, गोली वर्षा आदि नृशंसतापूर्ण, अतिक्रूर, जघन्यतम कार्य की कड़ी आलोचना कर स्वयं पुरी पहुँच कर सन्त-महात्माओं की सर्वविध से परिचर्या की ।

सनातन धर्म के सर्वस्व परमवन्दनीय श्री स्वामी जी महाराज का जितना गुणगान किया जाय वह अत्यल्प है । समग्र विश्व आपकी अतुलनीय आभा से अत्यधिक प्रभावित है । मनसा, वाचा,

कर्मणा प्रत्येक विधा से आप की क्रिया सनातन धर्म के वर्चस्व एवं अभ्युदय के लिए थी । त्रैदिक सनातन धर्म के सार्वत्रिक प्रचार के लिये आपने पद-यात्रा का व्रत लिया और पूरे भारत में आपने पदाति ही विचरण किया । इसी पद-यात्रा के सन्दर्भ में आपने राजस्थान के परिभ्रमण काल में विक्रमाब्द १९९९ में अखिल भारतीय श्री निम्बार्काचार्यपीठ की भी यात्रा की । आचार्य पीठ से आपका गहरा सम्बन्ध था । समय-समय पर आप के सामयिक समस्याओं के समाधान हेतु पत्र आते । गो-रक्षा-आन्दोलन काल में आप के द्वारा प्रेरित स्वहस्तलिखित पत्र जो बड़ा ही महत्वपूर्ण है भक्तों के लाभार्थ पत्राचार शीर्षकान्तर्गत वह प्रकाशित है । भावुक जन अवश्य ही आप के इस पत्र से आपकी धर्मतत्परता की अनुभूति करेंगे ।

यद्यपि विश्ववन्द्य धर्मसम्राट् स्वामी श्री करपात्री जी महाराज इन प्राकृत नेत्रों से अन्तर्हित हो गये हैं तथापि उनका दिव्य उपदेश एवं उनके स्वप्रणीत अनेक ग्रंथरत्न विद्यमान हैं । यदि जिज्ञासु धार्मिक जन इनका सम्यक् आलोडन करें तो श्री स्वामी जी महाराज शास्त्ररूप से आज भी प्रत्यक्ष ही हैं । □□
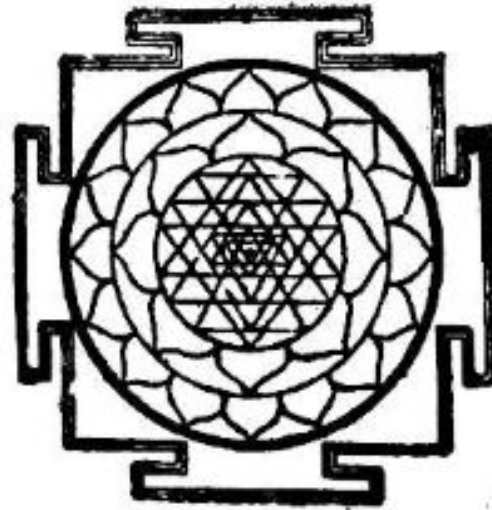
[ व्रतपूर्वक अध्ययन की प्रणाली भारतवर्ष की अपनी विशेषता है : इस विशेषता को प्रकाश में लाने के लिये अध्यापकों को तत्पर हो जाना चाहिये । त्याग और तप के बल पर ब्राह्मण यदि आर्य शिक्षा-पद्धति के संस्थापन के लिये खड़े हो जायें तो उनकी सफलता निश्चित है । ]

—करपात्र स्वामी

# पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज

सुमेरु काशी पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री शङ्करानन्द सरस्वती जी महाराज,
ऊर्ध्वाम्नाय, काशी।

अकारण करुण, करुणा वरुणालय भगवान की लीलामयी इस भारत भूमि में वर्तमान अनन्त श्री विभूषित धर्म सम्राट विश्ववंद्य यतिचक्र चूड़ामणि स्वामी श्री करपात्री जी महाराज सौभाग्य से भारतीय जनता के मध्य उपस्थित थे। इनका प्रातिभज्ञान लोकोत्तर था। संस्कृतवाङ्मय का कोई भी अंश ऐसा नहीं था जिस पर इनका पूर्ण अधिकार न हो। हमारा लगभग तीन दशक से गुरु शिष्य भाव का सम्बन्ध रहा है। हमें अनेक ग्रंथों का श्री महाराज के सान्निध्य में अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। ग्रंथों की ग्रंथियों का रहस्य अत्यन्त सरलता से समझाने की अद्भुत क्षमता थी उनमें। किसी भी ग्रंथ को अध्यापन से पूर्व देखने की श्री महाराज जी को आवश्यकता नहीं थी। अध्यापन, भाषण, लेखन कला आदि सभी क्षेत्रों में श्री महाराज जी का अप्रतिम अधिकार था। श्री महाराज जी के लिखे विचार-पीयूष, मार्क्सवाद और रामराज्य के अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि श्री महाराज जी का आधुनिक राजनीति की समस्त शाखाओं पर कितना विलक्षण अधिकार था। कोई भी पाश्चात्य राजनीति का मार्मिक विषय श्री महाराज की दृष्टि से तिरोहित नहीं था।

चातुर्वर्ण्य संस्कृति विमर्श वेद प्रमाण्य मीमांसा आदि के अध्ययन करने से श्री महाराज जी के मीमांसा दर्शन की विचार प्रणाली तथा वेदों का अद्भुत प्रकाण्ड पण्डित्य सुस्पष्ट ज्ञात होता है। श्रीविद्यारत्नाकर भी श्री महाराज जी की अद्भुत• कृति है। आज तक श्री विद्या के विषय में सांगोपाङ्ग परिपूर्ण दूसरा कोई ग्रंथ नहीं था। इस ग्रंथ के अध्ययन करने पर तंत्र विषय पर श्री महाराज का अद्वितीय अधिकार ज्ञात होता है।

महाराज श्री के गुणों का वर्णन करना सूरज को दीपक दिखाना होगा पूज्यपाद द्वारा गोवध बंदी के संदर्भ में चलाये गये आन्दोलन भारत की अखण्डता के लिए किये गये प्रयत्न, समाज में शास्त्रीय विधान की स्थापना, मन्दिरों की मर्यादा सुरक्षित रखने हेतु लिया गया संकल्प, स्वयं में उनकी कीर्ति स्तम्भ हैं। धर्म की राजधानी काशी उन्हें प्रिय थी। वे धर्म सम्राट थे। जिस दिन पूरे भारत में गोहत्या बन्द हो जायेगी, उसी दिन श्री चरणों के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी। गोहत्या के कलंक को भारत के सिर से मिटाने के लिए वह आगे आये। हम सब लोग उनके छोड़े कार्य को पूरा करें।

पूज्यपाद श्री की कल्पना भारत में वेदों का ईश्वर-राज्य, महाभारत पुराणों का धर्म-राज्य तथा रामायण का रामराज्य लाने की थी। उनका सोचना था कि यदि ये तीनों राज्य भारत में आ गये तो विश्व में शांति स्थापित होने में जरा भी विलम्ब नहीं होगा।

अनन्त श्री विभूषित धर्म सम्राट यतिचक्र चूड़ामणि स्वामी श्री करपात्री जी महाराज लग-

भग चार दशक तक भारतीय अध्यात्म गगन एवं धर्म क्षितिज पर अपनी आभा, विभा, प्रभा, तप, त्याग एवं वैदुष्य से छाये रहे। शास्त्र प्रतिपादित सनातन धर्म के सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार तर्क युक्ति तथा शास्त्र-वचनों के द्वारा उपस्थापित कर जनमानस में धर्म सम्राट के रूप में सर्वत्र व्याप्त थे। भाषण या प्रवचन का प्रभाव ऐसा मानो भगवती-भास्वती सरस्वती की उन्हें अनुपम देन थी। लेखन कला भी पूज्य चरण की अद्‌भुत थी। हिन्दी, संस्कृत उभय भाषा के लिखने में वे सिद्धहस्त थे। धार्मिक प्रेरणा के वे स्रोत थे। राजनीति, धर्म, दार्शनिक विचारों में भी उनकी कृतियाँ भारतीयों को सदा प्रेरणा देती रहेंगी। उनके विरोधी भी उनकी युक्तियों के सामने नत-मस्तक रहते थे।

कानपुर में बाबू सम्पूर्णानन्द जी ने वृन्दा के प्रसंग को उठाया। श्री महाराज जी ने लगभग बीस मिनट में ही शङ्का का उन्मूलन कर सनातन धर्म के पक्ष का अद्‌भुत ढंग से प्रतिपादन कर अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल पर भारतीय शास्त्रों के विचारों को सुनाकर उन्हें स्वकीय बनाया।

माध्व सम्प्रदायाचार्य स्वामी विद्यामान्य तीर्थ हरिद्वार में लगभग एक मास तक शास्त्रार्थ का चैलेन्ज अद्वैतवादियों को देते रहे। परन्तु वहाँ के किसी अद्वैतवादी ने उसे स्वीकार करने का साहस नहीं किया। अचानक वहाँ पर महाराज जी पहुँचे। कतिपय साधुओं ने श्री महाराज जी को समाचार सुनाया तथा उनसे निवेदन किया कि महाराज हम लोगों का पराभव लज्जास्पद हो रहा है। महाराज जी ने शास्त्रार्थ की चुनौती स्वीकार कर अपने पाण्डित्य से अद्वैतवाद की दुंदुभी बजा ही दी।

वर्णाश्रमव्यवस्थामूलक हिन्दू धर्म के संरक्षण के लिये कुछ करना आवश्यक है। इसके लिये उन्होंने ग्राम-ग्राम में संकीर्तन मण्डल की स्थापना पर बल दिया। जिसमें ग्राम के समस्त निवासी साथ में भाग लें। ये सुझाव अत्यन्त सराहनीय, माननीय तथा आचरणीय है क्यों कि इस अर्थ युग में अमीर व गरीब की खाई गहरी होती जा रही है। जिससे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आपस में धन के आधार पर दूर होते जा रहे हैं। समाजवाद ज्यों-ज्यों बढ़ता जा रहा है त्यों-त्यों भाई-चारे का सम्बन्ध समाप्त होता जा रहा है इसकी पुनः प्रतिष्ठा के लिये श्री महाराज जी का सुझाव वर्तमान में आवश्यक एवं सामयिक है।

श्री महाराज जी के शिष्यमण्डली में हम लोगों को चाहिये कि—'वयं पञ्चोत्तरशतम' के सिद्धांत का अवलम्बन कर परस्पर का यदि कोई वैमत्य हो भी तो उसे श्री महाराज जी के शब्दों में "पानी की लकीर की भांति साधुओं का भेद होता है' के आधार पर समन्वय स्थापित कर उनके सिद्धांत के प्रचार-प्रसार में लगा दें क्योंकि पूज्य महाराज जी का सर्वस्व धर्म या उनका जीवन धर्ममय था। उसी की स्थापना रक्षा के लिये जीवन भर महाराज जी ने संघर्ष किया। उसी मार्ग पर चलना ही हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

# श्री हरिहरानन्द सरस्वती करपात्री जी की स्मृति में

—ब्र० ली० श्रीमत्परमहंस परिव्राजक १००८ स्वामी श्री रामदेव जी महाराज,
श्री राधाकृष्ण मन्दिर, जे० के० कमला नगर, कानपुर (उ० प्र०)

श्री करपात्री जी का दर्शन प्रथम बार मुझको नरवर साङ्गवेद विद्यालय में हुआ था। मैं श्री गङ्गा तट पर भ्रमण करता हुआ द्वितीय बार जब नरवर पहुंचा तब करपात्री जी पर्ण कुटी में अध्यात्म रामायण का पाठ कर रहे थे। मैं दर्शन करके विद्यालय में चला गया। पाठ समाप्त होने के बाद वे भी विद्यालय में आ गये वहाँ पर सत्सङ्ग हुआ। उस समय उन्होंने दण्ड ग्रहण नहीं किया था। विद्वत संन्यास ले लिया था। वहाँ पर ऐसा विदित हुआ कि वहीं उन्होंने अध्ययन करने के अनन्तर श्री स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी जो उनके वेदान्त के गुरु थे उनसे संन्यास दीक्षा प्राप्त करने की प्रार्थना की। उन्होंने दीक्षा नहीं दी क्योंकि करपात्री की स्त्री थी और एक कन्या भी थी। श्री विश्वेश्वराश्रम जी सर्वशास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान थे अध्ययनाध्यापन के सिवाय और किसी सांसारिक कार्य में प्रवृत नहीं हुये थे। जब उन्होंने संन्यास की दीक्षा नहीं दी तब करपात्री जी और विष्णुदत्त और एक लंगड़े थे जिनका नाम मुझको स्मरण नहीं तीनों ने साथ ही विद्वत सन्यास लिया। उस समय करपात्री जी का नाम हरिहर चैतन्य था। तीनों साथ-साथ उत्तराखण्ड को चले गये। हरिहर चैतन्य और लंगड़े लौट आये। विष्णुदत्त नहीं लौटे और दिगम्बर रूप से उत्तराखण्ड में रह गये। संस्कृत भाषा में ही बात करते थे उनका दर्शन उत्तर काशी में मुझको हुआ था। लंगड़े महात्मा गङ्गा तट पर विचरते थे। उनका भी दर्शन मुझको हुआ था। हरिहर चैतन्य ऋषिकेश में कोयलघाटी पर कुछ दिन रहे वेदान्त ग्रंथों को पढ़ाया करते थे। वहीं पर करपात्री नाम लोगों ने रख दिया क्योंकि कर में ही भिक्षा मांग कर खा लेते थे। केवल ब्राह्मणों के ही घर भिक्षा लेते थे। एक वस्त्र रखते थे। वहाँ पर बहुत तप किया। ऋषिकेश में जितने सत्सङ्गी थे सब उनके पास जाया करते थे गौरीशंकर गोयनका और अन्य मारवाड़ी लोग और पंजाबी, गुजराती आदि स्त्री पुरुष जिज्ञासुजन अपनी जिज्ञासा शान्त करते थे। श्रीमद्भागवत में जो सन्देह आधुनिक लोग करते थे उनका समाधान युक्तियों द्वारा कर देते थे। उसी समय हरिद्वार का कुम्भ हुआ। उसमें मदनमोहन मालवीय गये थे उनकी श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में स्थित रास पञ्चाध्यायी में कुछ शंका थी गौरीशंकर गोयनका से बात हुयी। गोयनका जी ने उनसे कहा कि ऋषिकेश कोयल घाटी में एक विरक्त विद्वान हैं उनके पास चलिये वे आपकी शंका का समाधान कर देंगे। मालवीय जी करपात्री जी के पास गये किन्तु वहाँ भागवत की शंका का समाधान हो नहीं पाया। एक और ही प्रसङ्ग छिड़ गया, उस समय मालवीय जी सबको प्रणव सहित मन्त्र दीक्षा देने लगे थे। करपात्री जी ने उसका विरोध किया। हरिद्वार के कुम्भ में मालवीय जी और करपात्री के शास्त्रार्थ की योजना बनायी गयी। गौरीशंकर गोयनका और जयदयाल गोयनका मध्यस्थ बने। करपात्री और मालवीय का शास्त्रार्थ हुआ। गौरी शंकर गोयनका ने करपात्री जी का समर्थन किया। जयदयाल

गोयनका ने मालवीय जी का समर्थन किया। वहाँ कुछ निर्णय नहीं हुआ। करपात्री जी का वहाँ पर नाम हो गया। अन्त में गौरी शंकर गोयनका और जयदयाल गोयनका का उसी विषय में पत्र व्यवहार हुआ। वह पुस्तक रूप में छपा था। उसकी भूमिका करपात्री जी ने लिखी—किन्तु अपना नाम नहीं छपने दिया। उस पुस्तक का नाम मननीय प्रश्नोत्तर सम्भवतः था वहाँ से करपात्री पग यात्रा करते हुये काशी पहुंचे। वहाँ विद्वानों ने उनका बहुत आदर किया वहाँ से प्रयाग के कुम्भ में गंगा तट पर भ्रमण करते हुये जा रहे थे उस समय वहाँ पर छतनगा के पास एक पेड़ के नीचे झोंपड़ी में मैं ठहरा था। गंगा जी के तट पर भ्रमण करने गया था वहाँ दूसरी बार करपात्री जी का दर्शन हुआ उस समय करपात्री जी दण्ड ग्रहण किये हुये थे किन्तु उसको ब्रह्मचारी लेकर चलता था उसकी पूजा आदि नहीं करते थे बिना हमारे प्रश्न किये कहने लगे कि दण्ड ग्रहण करने की इच्छा नहीं थी किन्तु गुरु जी ने बहुत आग्रह किया इस कारण ग्रहण करना पड़ा। करपात्री जी के गुरु ब्रह्मानन्द सरस्वती थे उन्हीं ने उनको ब्रह्मचर्य की दीक्षा देकर हरिहर चैतन्य नाम रखा था। दण्ड देने के अनन्तर हरिहरानन्द सरस्वती रख दिया। मैंने कहा यदि आपकी इच्छा न होती तो किसी के आग्रह पर दण्ड नहीं लेते। भरत जी से सबने आग्रह किया कि राज ग्रहण करो भरत जी ने नहीं ग्रहण किया इस बात से करपात्री जी हंसने लगे। कुम्भ में जाकर डोंग जी ब्रह्मचारी के शिविर में निवास किया। मैं भी भ्रमण करने के लिये कभी-कभी जाया करता था वहाँ कुशासन पर बैठकर करपात्री जी उपदेश देते थे। सनातन धर्म के सिद्धान्त के प्रचार करने की वहाँ से ही विशेष प्रवृत्ति हुयी। धर्म ग्लानि अधर्माभ्युत्थान की निवृत्ति के लिये सबको अनुष्ठान का उपदेश देते थे। वक्तृत्व शक्ति अद्भुत थी जनता पर प्रभाव अधिक पड़ता था। तब लोग सभाओं में भी बुलाने लगे उस समय बड़ी कट्टरता थी स्त्रियों को संस्कृत में भाषण देने का भी विरोध करते थे। प्रयाग का कुम्भ समाप्त हुआ वहाँ से पगयात्रा प्रारम्भ हुयी। गंगा तट के किनारे रहने वाला एक ब्राह्मण बुला गया था। वहाँ जाना था मैं भी साथ में था और ब्रह्मचारी दण्डी स्वामी भी साथ में थे। रात्रि में प्रयाग नगर में लोहिया पाण्डे के घर पर निवास किया बड़ी भयंकर ओला की वृष्टि रात्रि में हुई पेड़ों के पत्ते गिर गये फसल नष्ट हो गयी। प्रातः होते ही यात्रा आरम्भ हो गयी। मार्ग में खेती की दशा देख करपात्री बड़े दुःखी हुये। गंगा किनारे ब्रह्मचारी ने भोजन बनाया भोजन विश्राम करके तब उस ग्राम में गये जहाँ ब्राह्मण ने बुलाया था। वह ब्राह्मण प्रतीक्षा कर रहा था उसने भोजन के लिये कहा करपात्री ने कहा हम लोग भोजन कर चुके हैं। तुम्हारे ग्राम में ओला पड़ने से फसल नष्ट हो गयी है। तुम बहुत दुःखी होंगे। ब्राह्मण बोला महाराज ऐसा तो होता ही रहता है ब्राह्मण सत्संगी था उसके यहाँ सन्त आया करते थे। वह पर्ण कुटी बना रखा था वहाँ सब ठहर गये। सूर्यास्त के समय २० या २५ विरक्त मण्डली के सन्त आ गये उनमें एक को पण्डित कहते थे वे सब ब्राह्मणेतर थे उन लोगों ने पण्डित जी के लिये खाट मंगवाया वे उस पर सोये उनके पांव को और लोग दबाने लगे। उसको देखकर गृहस्थ ब्राह्मण भी पांव दबाने लगे। पण्डित जी ने गायत्री मन्त्र का उपदेश देना प्रारम्भ किया और उसका अर्थ समझाने लगे। गायत्री का उच्चारण भी अशुद्ध करते थे अर्थ भी ठीक नहीं कर पाते थे रात्रि हो गयी थी अन्धेरा था वे लोग करपात्री जी को देख नहीं पाये

थे पहले तो करपात्री जी सुनते रहे। पश्चात वे बोलने लगे उनके बोलते ही बनावटी पण्डित चुप हो गये पहले तो वहाँ पर कई दिन ठहरने की योजना वे लोग बनाये थे जब उनको पता लगा करपात्री जी ठहरे हैं तो प्रातः अंधेरे में ही चले गये वहाँ यह स्मरण हुआ कि सूर्य के सामने खद्योत का चमकना बन्द हो जाता है। करपात्री जी भी प्रातः श्री गंगा स्नान कर चले हम लोग साथ में थे श्री गंगा का तट वहाँ छोड़ दिया। चित्रकूट की यात्रा प्रारम्भ हुई अनेक ग्रामों में होते हुये यमुना तट पर राजापुर पहुंचे वहाँ यमुना में स्नान किया तुलसीदास जी के आश्रम में गये। रामचरित मानस को देखा। केवल अयोध्या कांड था किन्तु तुलसीदास के हाथ लिखा नहीं है। वहाँ से भ्रमण करते हुये भयंकर वनों में होते हुये चित्रकूट पहुंच गये। वाल्मीक मुनि के आश्रम पर रात्रि में पर्वत के ऊपर विश्राम किया। वहाँ समस्त तीर्थों की यात्रा करके शिवरात्रि के दिन कालंजर की यात्रा की। वह बहुत दूर था करपात्री निर्जल व्रत थे तब भी यात्रा करते रहे। सायंकाल उस पर्वत पर पहुंचे शिव मन्दिर था ओर पर्वत में सरोवर बहुत सुन्दर था रात्रि में वहां निवास किया और शिव का पूजन किया। प्रातः स्नान करके यात्रा प्रारम्भ कर दी। ब्रह्मचारी ने आग्रह किया कि भोजन करके चलना चाहिये किन्तु करपात्री जी ने स्वीकार नहीं किया केवल अमरूद का फल खाकर जलपान किया। उससे वमन हुआ तब यात्रा स्थगित कर दी भोजन आदि करके चले अनेक ग्रामों में भ्रमण करते हुये बांदा होकर पुनः असनी ग्राम में गंगा तट पर पहुंचे वहाँ शंकराश्रम और अनंग बोधाश्रम दिगम्बर का दर्शन हुआ। शंकराश्रम विद्वान थे उनका सत्संग हुआ वहाँ से गंगा तट पर भ्रमण करते हुये कानपुर में आये। वहाँ करपात्री जी का प्रवचन हुआ। जनता अधिक प्रभावित हुयी जो लोग सनातन धर्म के विषय में सन्देह करते थे। उनका समाधान करपात्री जी अपनी युक्तियों से ऐसा करते थे कि पुनः वह शंका नहीं करता था।

वहाँ से भ्रमण करते हुये नरवर में पुनः सांगवेद विद्यालय में कुछ दिन निवास किया। वहाँ वहरिया में आये वहाँ एक उत्सव हो रहा था वहाँ संकीर्तन के समय प्रणव का उच्चारण होता था। उसका विरोध करपात्री जी ने किया वहाँ से अनूपशहर में गये वहाँ पर भी करपात्री जी का प्रवचन हुआ। वहाँ से श्री गंगा तट को छोड़कर श्री वृन्दावन की यात्रा किया मार्ग में अनेक ग्रामों, नगरों में होते हुये हाथरस में आये वहाँ सभाओं में प्रवचन हुये। वहाँ खांडग्राम के निवासी चोखेलाल आदि ब्राह्मण मिले उनके ग्राम में ब्रह्म सत्र का आयोजन था। वे लोग प्रयाग में ही निमन्त्रण दे आये थे उन लोगों ने आग्रह किया कि महाराज हमारे ग्राम में चलिए। वहाँ छपा हुआ कार्यक्रम दिखाया। उसमें उपनिषद् ब्रह्म सूत्र आदि की कथा का कार्यक्रम छपा था। उसको पढ़कर करपात्री जी ने कहा कि मैं वहाँ नहीं जाऊंगा। क्योंकि सभा में उपनिषद् कथा सुनाना शास्त्र विरुद्ध है तब उन लोगों ने कहा महाराज जैसी आपकी आज्ञा होगी वैसा करेंगे तब उस ग्राम में गये।

ज्येष्ठ मास था गर्म वायु चल रही थी। तब भी पग यात्रा करके वहाँ पहुंचे। भीमसेनी एकादशी का व्रत था करपात्री निर्जलव्रती थे और मौन भी थे। मैं भी उनकी कुटिया में ही बैठा था। वहाँ पर प्रयाग विश्वविद्यालय के एक प्राध्यापक आये और कहने लगे कि यहाँ के कार्यक्रम को

पूर्णानन्द तीर्थ उड़िया बाबा की आज्ञा से बनाया गया है। यदि उपनिषद् और ब्रह्म सूत्र की कथा जनता को सुनाया जाये तो क्या हानि है ? करपात्री जी मौन थे मुझको बोलना पड़ा। मैंने उनसे प्रश्न किया कि क्या आप उपनिषद् और सूत्र पर विश्वास करते हैं उन्होंने कहा कि हाँ। तब मैंने कहा कि उसमें तो विधान है जिसका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ हो वही उपनिषद् को पढ़ सकता है। इस विषय का विचार अपशूद्राधिकरण वेदान्त दर्शन में है भाष्य और टीकाकारों ने वैसा ही विचार किया है तब दे बोले यह बड़ा अन्याय है और उड़िया बाबा बड़े सिद्ध सन्त हैं उनकी आज्ञा उल्लंघन करना ठीक नहीं है। उड़िया बाबा को वहाँ के लोग श्रीकृष्ण का अवतार मानते थे उनकी बात को सुनकर करपात्री जी मौन व्रत छोड़ दिये और बोलने लगे प्राध्यापक महोदय चुप हो गये। वहाँ का सब कार्यक्रम परिवर्तित कर दिया गया। भगवद्गीता-योग वासिष्ठ-पञ्चदशी आदि ग्रंथ की कथा रखी गई। करपात्री जी भगवद्गीता का त्रयोदश अध्याय सुनाते थे हमको उपदेश साहस्त्री सुनाने को कहा गया, उड़िया बाबा पश्चात् आये। वे ग्राम निवासियों से कहने लगे कि कार्यक्रम क्यों परिवर्तित किया गया। ग्राम वालों ने कहा कि करपात्री जी की आज्ञा से किया गया यदि कोई करपात्री जी से शास्त्रार्थ करे और यह सिद्ध कर दे कि उपनिषद् सबको सुनाना चाहिये तो हम लोग वैसा ही करेंगे। उड़िया बाबा तो अधिक विद्वान नहीं थे। अधिक विद्वानों को साथ में रखते थे। उस समय कोई विद्वान शास्त्रार्थ के लिये नहीं तैयार हुआ। करपात्री जी को ज्वर हो आया अतएव उनका विषय भी हमको ही सुनाना पड़ता था उपदेश साहस्त्री सुनाते समय उसमें एक प्रसंग आया कि संन्यास का अधिकार ब्राह्मण को ही है। मैंने केवल शब्दार्थ किया मेरा स्वभाव है कि जब मैं किसी पुस्तक प्रसंग को सुनाता हूं तो शब्दार्थ ही करता हूं। कभी कहीं बहुत आवश्यक हुआ तो अधिक कह देता हूं। जब मैंने सुनाया कि ब्राह्मण को ही संन्यास का अधिकार है तब एक मोटा-ताजा लम्बा-चौड़ा गेरुआ वस्त्रधारी उठकर खड़ा हो गया और कहने लगा—सन्यास का अधिकार सबको है। हमने कहा कि तुमको तो नहीं है और की बात मैं पुनः बताऊंगा। वहाँ का नियम था वक्ता ऊँचे बैठता था और सब नीचे बैठते थे दूसरा कोई बीच में नहीं बोलता था हमने कहा तुमने नियम को भंग किया है उड़िया बाबा ने उसको बैठा दिया और उसको बोलने से रोक दिया। वह उन्हीं के साथ रहता था उड़िया बाबा ने हम से कहा कि अब आगे बात सुनाइये, मैंने कहा कि अब तो मैं इसी को सिद्ध करूंगा अनेक शास्त्रों के वचनों से और तर्क से डेढ़ घण्टा तक प्रवचन किया और कह दिया कि जिसको विचार करना हो वह विचार कर ले। वहाँ अखिलानन्द भी थे और अनेक पण्डित थे वे बहुत प्रसन्न हुये। करपात्री जी ने सुना वे भी प्रसन्न हुये। ज्वर के कारण वे सभा में नहीं गये दूसरे दिन भी उसी विषय पर व्याख्यान दिया जितनी जनता थी वह भी प्रसन्न हुयी। सभा के बीच में मैंने प्रथम बार प्रवचन किया वहाँ करपात्री जी का बहुत प्रभाव पड़ा।

वहाँ से भ्रमण करते हुये आगरा पहुंचे, आगरा में भी करपात्री जी का प्रवचन हुआ। वहाँ कई दिन रुके थे वहाँ से यात्रा करते हुये मथुरा पहुंचे। वहाँ पर श्रीनाथ के मन्दिर में रुके। वहाँ पर करपात्री जी रास पञ्चाध्यायी पर प्रवचन प्रारंभ किया। मथुरा के प्रायः सभी पण्डित सुनने आते थे बहुत भीड़ होती थी। पञ्चदश दिवस तक रास पञ्चाध्यायी के प्रथम श्लोक पर ही व्याख्यान करते
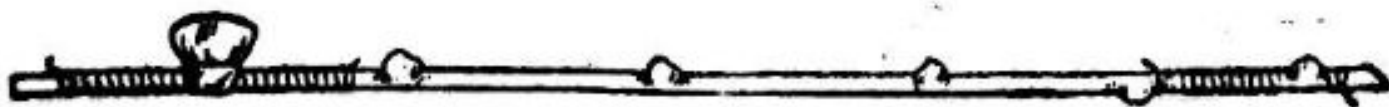
रहे । वहाँ से वृन्दावन आये वहाँ मिर्जापुर की धर्मशाला में निवास किया वहाँ भी रास पञ्चाध्यायी पर ही प्रवचन किया वृन्दावन में भी पण्डित श्रवण करने आते थे यहाँ जो गोस्वामी किसी अन्य की कथा भी नहीं सुनते थे वे भी आते थे। वृन्दावन निवासियों पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा । वहाँ भी पन्द्रह दिन तक उस प्रथम श्लोक पर प्रवचन किया । करपात्री जी की वाणी में बहुत ही रस था । वहाँ से करपात्री जी वृन्दावन की यात्रा के लिये चले गये मैं अकेला ही श्री गंगा तट पर चला गया इस प्रकार छः मास तक निरन्तर साथ रहा । पश्चात हरिद्वार के कुम्भ में भी कृष्णबोधाश्रम जी, करपात्री जी और मैंने पर्ण कुटियों में गंगा स्थलीय ब्रह्मचारी के आश्रम में निवास किया । वहाँ भी वृक्ष के नीचे प्रवचन होता था । सभाओं में भी लोग बुलाते थे वहाँ भी प्रभावशाली प्रवचन होता था । करपात्री जी की प्रबल इच्छा थी कि सनातन धर्म के सिद्धांत का प्रचार हो ।

श्री वृन्दावन में करपात्री जी के प्रभाव की एक घटना और लिखता हूं । पूर्णानन्द तीर्थ उड़िया बाबा ने श्री वृन्दावन धाम में कृष्णाश्रम का निर्माण करवाया उसमें प्रथम उत्सव आयोजित किया गया करपात्री जी को भी आमंत्रित किया गया । करपात्री जी पग यात्रा द्वारा वहाँ पहुंचे । मैं भी पग यात्रा से वहाँ पर पहुँच गया । मिर्जापुर की ही धर्मशाला में निवास किया । उड़िया बाबा का उधर बहुत प्रभाव था बहुत सेठ साहूकार उनके भक्त थे उनको कृष्ण का अवतार माना जाता था । बहुत सी जनता वहाँ इकट्ठी हुई कथा कीर्तन प्रवचन होता रहा करपात्री जी को बुलाया गया । करपात्री जी ने कहा वहाँ ब्राह्मणेतर व्यास गद्दी पर बैठकर कथा कहते हैं और प्रणव का उच्चारण सभी लोग सामूहिक रूप में करते हैं । इस कारण मैं नहीं आऊँगा यदि उपरोक्त बातें न की जायें तो आ सकता हूं उड़िया बाबा ने कहा वे बातें मैं नहीं रोक सकता । उन्होंने बहुत से विद्वानों को धन देकर बुलाया था उनको इस बात का अभिमान था कि विद्वान हमारा समर्थन करेंगे ।

करपात्री जी उनके आश्रम में नहीं गये उसी धर्मशाला में प्रवचन करते रहे । भागीरथी सेठानी ने अष्टोत्तरशत १०८ भागवत सप्ताह का आयोजन किया । करपात्री जी का प्रवचन होने लगा । श्री वृन्दावन धाम के भक्तजन भागवत कथा रस पीने के लिये उमड़ पड़े । जो बाहर के लोग उड़िया बाबा के आश्रम में आये थे वे भी कथा श्रवण के लिये आने लगे । उधर जिन विद्वानों को उड़िया बाबा ने निमन्त्रण देकर बुलाया था वे भी उनके विरोधी हो गये । वृन्दावन निवासी तो वहाँ गये नहीं । सब जनता करपात्री जी से प्रभावित हुयी । समाचार पत्र भी करपात्री के अनुकूल हो गये ब्रजवासी उनके यहाँ भोजन करने भी नहीं गये उड़िया बाबा दर्शन करने मन्दिरों में गये उनको गोस्वामी लोग दर्शन नहीं कराया उनसे दक्षिणा नहीं लिया । यहाँ से अष्टोत्तर भागवत से ही विशेष प्रवृत्ति हुयी । इसके अनन्तर काशी के चातुर्मास्य के पश्चात् धर्म संघ की स्थापना विन्ध्याचल में किया गया । हमारे पास पत्र आया कि आप भी इस संघ में सम्मिलित हों । मैंने उत्तर दिया कि मैं किसी संघ या सभा में सम्मिलित नहीं होता, सनातन धर्म के सिद्धांत का प्रतिपादन अवश्य करता हूं और करूंगा क्योंकि मैंने काशी में विद्याध्ययन किया है । मुझको सब सभाओं का पता है । सनातन धर्म के प्रचार के लिये सनातन धर्म सभाएँ है । भारत धर्म महामण्डल है । वर्णाश्रम स्वराज्य संघ बना है । धर्म के प्रचार के

लिये बहुत धन संग्रह किया गया किन्तु कुछ व्यक्ति धन अपने पास रखकर पचा गये। उसके अनन्तर करपात्री जी के प्रभाव से ब्रह्मानन्द सरस्वती को ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य बनाया गया। प्रयाग के कुम्भ में धर्म संघ का संगठन किया गया। करपात्री कहते थे कि धन के संग्रह के बिना ही धर्म संघ का कार्य चलेगा। मैंने उनसे कहा कि सभा या संघ बिना धन के नहीं चलते हैं। जिन पण्डितों को आपने इसमें लिया है ये आपके नाम से धन संग्रह करेंगे और उसको पचा जायेंगे।

उनके त्याग विद्वत्ता से जनता अधिक प्रभावित होती थी। इस कारण कर्म-काण्ड के कुछ वैदिक पण्डितों की प्रेरणा से शत कुण्डी यज्ञ का आयोजन किया गया। जिसमें स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी ने बहुत बड़ा सहयोग दिया। यज्ञ भारत की राजधानी दिल्ली में करने का निश्चय हुआ। यमुना तट निगम बोधघाट पर यज्ञ का आयोजन हुआ। उसमें भी मैं सम्मिलित हुआ था उस यज्ञ में अपार भीड़ हुयी। अन्न घृत रुपये की कोई कमी नहीं रही उसमें करपात्री जी को बहुत परिश्रम करना पड़ा। यद्यपि उस यज्ञ का बहुत विरोध भी हुआ। तब भी यज्ञ बहुत सफल रहा करपात्री जी के प्रभाव से विरोधी कुछ नहीं कर सके। वहीं से यज्ञ की परम्परा चल पड़ी। कानपुर, काशी आदि में भी वैसे ही यज्ञ हुये किन्तु दिल्ली के समान कोई नहीं हुआ।

करपात्री जी के प्रभाव को देखकर लोगों ने उनको राजनीति में लाने का प्रयत्न किया वे उसमें आ गये। रामराज्य परिषद नामक संस्था की स्थापना हुयी। उसका प्रचार होने लगा बहुत से राजे महाराजे उसमें सम्मिलित हुये चुनाव में कहीं कहीं सफलता भी मिली। किन्तु पूरी सफलता नहीं मिली। इस कारण बहुत से लोग उससे अलग हो गये। करपात्री जी के बहुत से भक्त भी उससे अलग हो गये। बहुत से प्रबल विरोधी बन गये। उनके गुरु ब्रह्मानन्द ने भी उनका विरोध किया तब भी करपात्री जी उसका प्रचार करते रहे। काशी जी में धर्म-संघ शिक्षा-मण्डल की स्थापना हुयी। उसका कार्य पहले तो चला पश्चात उसमें भी विरोध होने के कारण शिथिलता आ गयी।

करपात्री जी ने बहुत सी पुस्तकें भी लिखी हैं। उनमें धर्म और भक्ति का वर्णन उत्तम रीति से किया है। अन्तिम पुस्तक वेदार्थ पारिजात बहुत ही श्रेष्ठ है। अधिक परिश्रम और चिन्ता के कारण उनका शरीर रोग ग्रस्त हो गया औषधियों के सेवन करने पर भी रोग दूर नहीं हुआ। उसी से शरीर छूट गया अब उनके ग्रंथों से ही जनता को लाभ हो सकता है। उनका प्रकाशन करना ही चाहिये। मेरा करपात्री जी का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। मैं उनसे सदा मिलता रहता था। व्यावहारिक विषय में मतभेद होने पर भी सैद्धान्तिक विषय में कोई मतभेद नहीं था उनकी कुछ स्मृतियाँ लिख दिया है। अधिक लिखने से तो बहुत बड़ा ग्रथ तैयार हो सकता है।

●●



Scanned by CamScanner

# पूज्य स्वामीजी का संस्मरणात्मक परिचय

### अनन्त श्री स्वामी श्री अखण्डानन्द जी सरस्वती

श्री करपात्री जी महाराज के साथ ४०-४५ वर्षों तक सत्सङ्ग एवं आलाप का सौभाग्य मिलता रहा। एक बार अपने हृदय-पटल पर हम उनकी स्मृतियों की जगमगाती हुई झलक देखने का प्रयास करते हैं।

सर्वप्रथम लोगों में यह चर्चा फैली कि गङ्गा तट पर एक कौपीन मात्र धारी महात्मा विचरण करते हुये आ रहे हैं। उनके पास वस्त्र है, कौपीनाच्छादन मात्र। पात्र कोई नहीं है। ब्राह्मणों के घर से हाथ पर ही भिक्षा लेकर करते हैं। कोई संग्रह नहीं, परिग्रह नहीं। कोई शिष्य-सेवक नहीं। हमारी सत्सङ्गप्रिय मित्र-गोष्ठी दर्शन के लिये उत्सुक हुयी।

थोड़े दिनों बाद श्री करपात्री जी महाराज ने दण्ड ग्रहण कर लिया। दिग्-दिगन्त में उनके पाण्डित्य का प्रकाश व्याप्त होने लगा। हमें ज्ञात हुआ कि वे नरवर के षड्दर्शनाचार्य स्वामी श्री विश्वेश्वराश्रम से विद्याध्ययन कर चुके हैं, श्री उडिया बाबा जी महाराज से सत्सङ्ग करते रहे हैं एवं श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती महाराज से (तब तक वे ज्योतिष-पीठाधीश्वर नहीं हुये थे) दण्ड ग्रहण किया है। वे सनातन धर्म की पद्धति के पूर्ण समर्थक हैं एवं शास्त्रों के अक्षर, पंक्ति में निष्ठा रखते हैं तथा अपनी अद्‌भुत प्रतिभा एवं प्रसन्न-गम्भीर विद्या के द्वारा सबका समन्वय करते हैं, युक्तियुक्त सिद्ध करते हैं। अब उनके दर्शन की उत्कण्ठा अधिकाधिक प्रबल होने लगी।

स्वामी श्री करपात्री जी महाराज, अब जिनका नाम श्री हरिहरानन्द जी सरस्वती हो चुका था, के दर्शन का सुयोग तो तब मिला, जब मैं झूँसी में ब्रह्मचारी श्री प्रभुदत्त जी महाराज के सम्वत्सरव्यापी संकीर्तन में श्रीमद्भागवत पर प्रवचन कर रहा था।

भागवत के प्रवचन से उठने के पाद जब श्री करपात्री जी महाराज, गङ्गा तट पर विरक्तों से मिलने के लिये जाने लगे, तब मैं भी उनके पीछे हो गया। उस समय वे संस्कृत में ही भाषण करते थे। मेरे प्रवचन की उन्होंने प्रशंसा की; शास्त्रानुकूल एवं संगत बताया। बाद में उन्होंने पूछा कि, सुना है, तुम श्रीकृष्ण-लीला का बहुत बढ़िया वर्णन करते हो, तुम सिद्धांतरूप से उसका निरूपण करते हो या परमत के रूप में। मैने कहा —"परमत के रूप में"। उनके मुख से संस्कृत में शब्द निकला— "त्वन्मुखे घृतशर्करा" अर्थात 'तुम्हारे मुँह में घी शक्कर'। विरक्तों में उनकी ब्रह्मविद्या, दर्शन शास्त्र के पाण्डित्य एवं अद्‌भुत प्रतिभा की प्रतिष्ठा बढ़ रही थी। वे उस समय उदीयमान सूर्य के समान चमक रहे थे।

उन्हीं दिनों गीता प्रेस के संस्थापक सेठ जयदयाल जी गोयन्दका, श्री ब्रह्मचारी जी के आमन्त्रण पर संकीर्तन-उत्सव में झूँसी आये हुए थे। वे श्री करपात्री जी महाराज से मिले। सेठ जी ने यह प्रश्न उठाया —"ज्ञानी के जीवन में काम-क्रोधादि दोष रहते हैं अथवा नहीं।" सेठ जी का
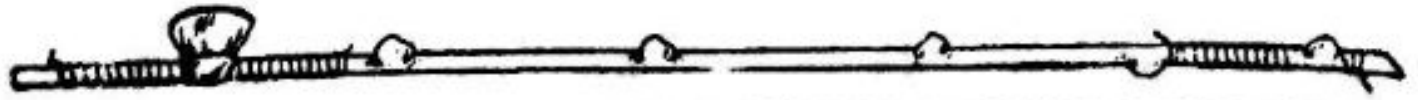
कहना था कि 'यदि तत्त्वज्ञानी के जीवन में ये विकार बने रहेंगे, तो दुःख भी बना रहेगा। यदि तत्त्व-ज्ञान से दुःख की निवृत्ति नहीं हुयी तो कोई भी तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयत्न क्यों करेगा? यह प्रश्न सेठ जी, इसके पहले कुम्भ मेला में आये हुये अन्य महापुरुषों से भी कर चुके थे। सेठ जी ने यही प्रश्न श्री करपात्री जी महाराज से किया और तत्त्वज्ञ के जीवन में विकार मानने से समाज की हानि का प्रतिपादन किया।

श्री करपात्री जी महाराज ने निरूपण किया कि 'औपनिषद् महावाक्य के द्वारा अखण्डार्थ का साक्षात्कार होने पर अविद्या की निवृत्ति हो जाती है, यह तो ठीक है। परन्तु, जब तक शरीर है तब तक उसमें यौवन, वार्धक्य, रोग आते रहते हैं। स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाएँ भी आती हैं। साक्षी के ब्रह्मत्व का बोध होने से अन्तःकरण एवं विषय के भान में कोई अन्तर नहीं पड़ता। ब्रह्मविद्या, केवल भ्रम को निवृत्त करती है, भासमान (प्रपंच) को नहीं। अतएव साक्षीभास्य अन्तःकरण में यदि तत्त्वज्ञान के अनन्तर भी विकार आते हैं, तो उससे मुक्ति में कोई बाधा नहीं पड़ती, क्योंकि आत्मा तो नित्य मुक्त स्वरूप है। अविद्या की निवृत्ति तो केवल उपलक्षण मात्र है। इसलिए समाज के लिए यही हितकारी है कि उसे ज्ञात रहे कि तत्त्वज्ञ के जीवन में भी विकार हो सकते हैं और वह अन्ध-श्रद्धा के वश होकर ज्ञानी को निर्विकार समझकर, ठगा न जाय और धोखे में न पड़े। इससे सम्प्रदाय की कोई हानि नहीं होगी प्रत्युत् सत्यवादी होने के कारण समाज में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

श्री करपात्री जी महाराज के निर्भय निरूपण से, कुम्भ के मेले में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी एवं उनको विद्या का यश चारों ओर फैलने लगा। मेरे चित्त पर उनके वैराग्य, त्याग, विलक्षण प्रतिभा एवं शास्त्र-ज्ञान का अत्यधिक प्रभाव पड़ा और मेरे मन में उनसे बारम्बार मिलन, दर्शन, सत्सङ्ग की आकांक्षा बढ़ने लगी।

श्री करपात्री जी महाराज अपनी विलक्षण प्रतिभा से सभी महात्माओं को प्रभावित कर लेते थे। उनका कहना यह था कि यदि प्रत्यक्ष अनुमान आदि प्रमाणों से प्रत्यगात्म-स्वरूप ब्रह्म का बोध हो जाय तो वेदों की प्रामाणिकता ही नष्ट हो जायेगी। प्रमाण वही होता है जो प्रमाणान्तर से अनधि-गत एवं अबाधित वस्तु का असंदिग्ध बोध कराता है। परोक्ष, स्वर्गादि रूप फल, यज्ञ-यागादि धर्म के अनुष्ठान से कैसे मिलते हैं, यह बात वेद-शास्त्रों के अतिरिक्त और किसी भी प्रकार जानी नहीं जा सकती। (यज्ञ-यागादि रूप) प्रत्यक्ष-धर्म का परोक्ष फल के साथ सम्बन्ध बताने में ही शास्त्रों की सार्थकता है। धर्म का ज्ञान केवल लौकिक दृष्टि से नहीं हो सकता है।

दूसरी बात यह थी कि नित्य अपरोक्ष आत्मा केवल अज्ञान के कारण ही अप्राप्त-सा हो रहा है। वह भी शास्त्र के अतिरिक्त और किसी प्रमाण से ज्ञात नहीं हो सकता। जैसे, शब्दादि विषय श्रोत्र चक्षु आदि के द्वारा ही प्रत्यक्ष होते हैं—अपने-अपने विषय में सब प्रमाण स्वतन्त्र होते हैं, इसी प्रकार प्रत्यक् चैतन्याभिन्न परमात्म-तत्त्व के सम्बन्ध में एकमात्र शास्त्र ही प्रमाण है। प्रत्यक्ष आदि प्रमाण यदि शास्त्रोक्त विषय का समर्थन करने में उपयोगी हों तो उनको भी मान्य करना चाहिये।

वैसे तो मैंने ब्राह्मण-महासम्मेलन में भारतवर्ष के धुरन्धर विद्वानों के, जिनमें लक्ष्मण शास्त्री द्राविड़, पंचानन तर्करत्न, श्री चिन्न स्वामी, श्री अनन्त कृष्ण शास्त्री आदि सम्मिलित थे—इस विषय का विचार-विनिमय सुना था। परन्तु श्री करपात्री जी की नव-नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा साधारण जनता को भी श्रुति-स्मृति पर विश्वास करने के लिये बाध्य कर देती थी।

श्री करपात्री जी महाराज वेद की अपौरुषेयता पर दृढ़ थे वेद के कर्ता का कहीं भी वेद में वर्णन नहीं है, वेद अविच्छिन्न सम्प्रदाय-परम्परा से प्राप्त है; अन्य प्रमाणों से अनधिगत एवं अबाधित वस्तु का प्रतिपादक है; ज्ञानात्मक होने से वेद का वास्तविक स्वरूप प्रत्यक्चैतन्याभिन्न ही है अनात्मा होने पर वेद भी अनात्मकक्षा में निक्षिप्त हो जायेगा। यह भी ध्यान रखने योग्य है कि कोई भी व्यावहारिक वस्तु ब्रह्मज्ञान के अव्यवहित-पूर्वक्षणपर्यन्त बाधित नहीं होती। अतएव जिसको ब्रह्मज्ञान नहीं हुआ है, उसको किसी भी व्यावहारिक वस्तु को मिथ्या कहने का अधिकार नहीं है। वर्णाश्रमोचित व्यवहार ब्रह्मज्ञान पर्यन्त करना ही चाहिये। जो लोग वर्णाश्रम-मर्यादा का उल्लंघन करके संकीर्तन करते हैं या मनमाने अनुष्ठान करते हैं, मन्त्रोपदेश करते हैं, उनके प्रति श्री करपात्री जी महाराज का बड़ा कठोर दृष्टिकोण था। वे खुले रूप से उनका खण्डन करते थे।

श्री हरि बाबा जी महाराज संकीर्तन के प्रारम्भ में प्रणव का उच्चारण करते थे। पण्डित श्री मदन मोहन जी मालवीय हरिजनों को भी सामूहिक रूप से प्रणव, स्वाहा आदि से संयुक्त मन्त्रों का उपदेश करते थे। श्री करपात्री जी महाराज ने दोनों का विरोध किया। श्री उड़िया बाबा जी महाराज के पास सन्देश भेजा कि श्री हरि बाबा जी को प्रणव उच्चारण करने को मना कीजिये। श्री उड़िया बाबा जी महाराज ने कहा कि जब तक कोई पूछे नहीं तब तक किसी को उपदेश नहीं करना चाहिये–'नापृष्टः कस्यचित् ब्रूयात्' (मनुस्मृति)। यदि श्री हरि बाबा जी मुझसे पूछें तो मैं उनको बतला सकता हूँ। वे महात्मा हैं, जो वे करते हैं उसमें मैं हस्तक्षेप क्यों करूँ? इस उत्तर से श्री करपात्री जी महाराज कुछ असन्तुष्ट हुये। यद्यपि वे छात्रावस्था में नरवर में पढ़ते समय, बाबा के पास, रामघाट एवं कर्णवास में प्रत्येक अनध्याय के दिन सत्सङ्ग करने के लिये आते थे और उनकी श्रद्धा भी बहुत अधिक थी, फिर भी शास्त्र-निष्ठा के कारण उन्हें अपने व्यवहार में कुछ परिवर्तन करना पड़ा।

पण्डित श्री मदन मोहन मालवीय जी के साथ इसी विषय को लेकर ऋषिकेष में शास्त्रार्थ हुआ। कई दिनों तक श्री करपात्री जी एवं मालवीय जी अपना-अपना पक्ष प्रस्तुत करते रहे। मालवीय जी, पुराणों से भगवन्नाम मन्त्र, पूजा आदि केवचन उद्धृत करते। श्री करपात्री जी धर्मशास्त्र एवं मीमांसा की दृष्टि से उसी का खण्डन किया करते थे। दोनों अपने-अपने निश्चय पर अडिग रहे। इस शास्त्रार्थ में मध्यस्थता करने के लिए दो व्यक्ति चुने गये थे। १—जयदयाल गोयन्दका, गीता प्रेस के संस्थापक, २—काशी के विद्वान सेठ श्री गौरीशंकर गोयन्दका। गौरीशंकर जी ने स्पष्ट रूप से श्री करपात्री जी के पक्ष में अपना निर्णय दिया। परन्तु, सेठ जयदयाल जी ने कहा कि एक रकम से तो युक्ति परिस्थिति आदि की दृष्टि से मालवीय जी का पक्ष परिपुष्ट है और शास्त्रीय दृष्टि से श्री करपात्री

जी का। इससे श्री करपात्री जी महाराज किंचित अप्रसन्न हुए। परन्तु, शास्त्रार्थ में उनकी विजय तो हो ही गयी थी। उस समय यह बात आगे नहीं बढ़ी।

जिन दिनों मैं गोरखपुर में कल्याण के सम्पादन-विभाग में काम करता था, सेठ जयदयाल जी ने 'विद्या-अविद्या एवं सम्भूति-असम्भूति' के सम्बन्ध में एक लेख लिखा। लेख में प्रत्यक्ष रूप से ही शांकरभाष्य का खंडन था। उन्होंने अपने लेख में 'विद्या' का अर्थ ब्रह्मविद्या किया था तथा 'असम्भूति' का अर्थ ईश्वर। जहाँ तक मुझे स्मरण है दोनों के सम-समुच्चय का प्रतिपादन किया था। श्री करपात्री जी महाराज ने उस लेख का खंडन कल्याण में प्रकाशित करने के लिये लिख भेजा। परन्तु, कल्याण में वह लेख प्रकाशित नहीं हुआ। श्री करपात्री जी इससे असन्तुष्ट हुये। 'कल्याण' को अपना लेख तो देना बन्दकर ही दिया, कहीं से उद्धृत करके भी अपने लेखों को छापने से मना कर दिया। वे अपनी निष्ठा में अत्यन्त दृढ़ एवं असंदिग्ध थे। मैंने भाई जी से कहा कि शांकर-भाष्य सर्वथा युक्ति-युक्त एवं अनुभव-संगत है। श्री करपात्री जी ने उसका उचित समर्थन किया है। उनका लेख न छापना ठीक नहीं है। भाई जी ने कहा, कि आप एक लेख लिख दीजिये, वह छाप दिया जायेगा :

श्री करपात्री जी मुझसे प्रसन्न थे और बहुत स्नेह करते थे। विशेषकर के 'कल्याण' के साधारण अंकों में मेरे सैकड़ों लेख प्रकाशित हुए। भागवत की भूमिका (जो अब 'भागवत-दर्शन' में प्रकाशित हुयी है) भागवत का अनुवाद, साधना-अंक आदि में मेरे लिखे लेखों को देखकर, पढ़-सुनकर वे कभी-कभी अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते थे और प्रशंसा भी करते थे। मैं उनके सिद्धांत को भली-भांति समझता था। धर्म एवं ब्रह्म शास्त्रैकगम्य हैं। नित्य-परोक्ष एवं नित्य-अपरोक्ष वस्तु के साक्षात्कार में वाक्य ही प्रमाण होते हैं, प्रत्यक्ष अनुमानादि नहीं। प्रत्यक्ष, अनुमानादि के द्वारा शास्त्रोक्त पदार्थ को युक्ति-युक्त सिद्ध करना चाहिये। वे सहायक हैं, परन्तु शास्त्र के विरुद्ध होने पर वे तुच्छ एवं अकिंचित्कर हैं।

'कल्याण' के सम्पादन विभाग ने परस्पर परामर्श करके यह निश्चय किया कि मुझ पर श्री करपात्री जी प्रसन्न रहते हैं, अतः उनके प्रसाद का लाभ उठाकर उन्हें मना लिया जाय। मुझे बलिया भेजा गया। भृगु मुनि के स्थान में श्री करपात्री जी ठहरे हुये थे। काशी के पण्डितराज श्री सभापति उपाध्याय वहाँ आये हुये थे। सत्संग की चर्चा के अनन्तर मैंने उनसे 'कल्याण' के लेख के लिये प्रार्थना की। वे हँसते हुये प्रसन्न मुद्रा में बात करते रहे।

श्री करपात्री जी महाराज ने कहा "लेख तो मैं अब 'कल्याण' को सीधे नहीं दे सकता। हाँ, मेरा कोई लेख कहीं भी प्रकाशित हो तुम लोगों को पसन्द आए तो छाप दिया करो।" मेरे लिये इतनी छूट, उनका अनुग्रह था।

श्री करपात्री जी महाराज ने काशी के स्वामी श्री ब्रह्मानन्द जी सरस्वतीमहाराज से संन्यास ग्रहण किया था। उस समय तक स्वामी श्रीब्रह्मानन्द जी महाराज, ज्योतिषपीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य नहीं हुये थे। वे श्री करपात्री जो महाराज के गुरु हैं, यह जानकर मेरे हृदय में उनके प्रति श्रद्धा

जाग्रत हुई । मैं वहाँ आने-जाने लगा । मेरे संन्यास का निश्चय हुआ । परन्तु, इसमें 'कल्याण' परिवार के कार्यवश दो-तीन वर्ष का विलम्ब हो गया । तब तक वे शंकराचार्य हो गये । मैं दन्ड ग्रहण के अनन्तर पहले-पहल ऋषिकेश की कोयलघाटी में करपात्री जी के दर्शन करने गया । वहां उन्होंने मुझे अपने आसन पर ही बैठा लिया और कृष्ण-लीला पर प्रवचन करने को कहा । मैंने बड़े संकोच के साथ उनकी आज्ञा स्वीकार की ।

मैंने श्री हरि सूरि के 'भक्ति-रसायन' का आधार लेकर, भगवान की जन्म-लीला सुनाई । श्री करपात्री जी महाराज बहुत प्रसन्न हुये ।

मैं जब हरिद्वार से वृन्दावन के लिये पैदल लौट रहा था तब मेरठ में श्री करपात्री जी महाराज की अध्यक्षता में कोई यज्ञ हो रहा था । श्री गिरिधर शर्मा, श्री अखिलानन्द आदि विद्वान वहाँ इकट्ठे थे । पूतना-उद्धार का प्रसङ्ग सुनाने के पश्चात् उनके निवास स्थान पर जाकर मैंने वेदों की अपौरुषेयता के सम्बन्ध में प्रश्न किया । मन्त्रों की आनुपूर्वी अनादि एवं नित्य है, यह बात मेरे विश्वास का विषय नहीं हो रही थी । उस समय उन्होंने मुझे पंडित नकच्छेद राम द्विवेदी द्वारा लिखित एवं हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'सनातन-धर्मोद्धार' ग्रंथ को देखने का परामर्श दिया । वैसे वह ग्रंथ मैंने पहले पढ़ा तो था किन्तु इस दृष्टि से नहीं । अन्ततोगत्वा उन्होंने हँसते हुये कहा कि वास्तविक नित्यता तो ज्ञानस्वरूप आत्मा में ही होती है । वेद का यथार्थ परमार्थ आत्मा ही है । और तो सभी अनात्म-पदार्थों की नित्यता आरोपित एवं कल्पित ही है । यह बात मुझे अच्छी तरह जम गयी ।

कभी-कभी उनके अनुग्रह का स्मरण कर हृदय भर आता है । वे काशी के नगवा स्थित 'गंगा-तरंग' में ठहरे हुये थे । मैं ग्यारह बजे दिन में उनके पास पहुँच गया । मैंने उनसे प्रश्न किया कि सभी आस्तिक दर्शनों में यह देखने में आता है कि ईश्वर को पूरा-पूरा महत्त्व नहीं दिया गया है । न्याय-वैशेषिक में आत्मा एक द्रव्य है—ज्ञानाधिकरण । उसके दो भेद हैं — जीवात्मा और परमात्मा । योग दर्शन में ईश्वर समाधि का साधन मात्र है । निरोध दशा में या द्रष्टा के स्वरूपावस्थान में ईश्वर की चर्चा नहीं की जा सकती । अनुमान से प्रकृति ही सिद्ध होती है, ईश्वर नहीं । पूर्व-मीमांसा में कर्म ही प्रधान है । वही अपूर्व बनकर अपना फल भी दे लेता है । वेदान्त-दर्शन में माया की उपाधि से ब्रह्म में ईश्वरत्व है । ऐसी स्थिति में आप कुछ अपना अनुभव सुनाइये । प्रश्न सुनकर प्रसन्न मुद्रा में वे बैठ गये । चार बजे तक समझाते रहे । उस दिन भिक्षा करने नहीं गये ।

श्री हरि बाबा जी महाराज के प्रणव-संकीर्तन को लेकर श्री करपात्री जी महाराज ने परम पूज्य श्री उड़िया बाबा जी के पास आना बन्द कर दिया था । मुझे यह बात खटकती रहती थी । जो पहले बाबा के प्रति इतना आदर भाव रखते थे, सत्संग के लिये आया करते थे, वे अब कभी बाबा के दर्शन के लिये भी नहीं आते, यह कुछ असमंजस-सा लगता है । मैंने एक दिन श्री उड़िया बाबा जी महाराज से कहा कि वे नहीं आते तो क्या हुआ, विद्वान हैं, त्यागी हैं, महात्मा हैं, आप ही उनके पास

कभी चले चलिये तो क्या है ? बाबा ने कहा, क्यों नहीं ? जब कहो, मैं उनके पास चल सकता हूँ। मैंने कहा बाबा, वे आजकल वृन्दावन में ही हैं। धर्म-संघ विद्यालय में ठहरे हुये हैं, आप चले चलिये न ? बाबा एक बालक की रुचि पर भी ध्यान देते थे। उनके मन में तो जैसे कोई आग्रह ही नहीं था। उठ खड़े हुये, 'चलो बेटा'। मैं उनके पीछे-पीछे पैदल चलने लगा। एक व्यक्ति को चुपके से दौड़ा दिया कि वह आकर श्री करपात्री जी को बता दे। श्री करपात्री जी महाराज समाचार सुनते ही बिना पादुका के ही छत पर से उतर कर रास्ते में आ गये, प्रणाम किया एवं बाबा को ऊपर ले गये। थोड़ी देर तक बात चीत होती रही, बाबा आश्रम में लौट आये। दूसरे ही दिन श्री करपात्री जी एवं श्रीकृष्ण बोधाश्रम जो बाबा से एकांत में मिलने के लिये समय लेकर आये। १-२ घन्टे तक गोष्ठी होती रही। मुझे भी उसमें सम्मिलित कर लिया गया था। इस प्रसंग के बाद, बाबा एवं श्री करपात्री जी का मिलना-जुलना फिर से होने लगा।

दिल्ली में गायत्री महायज्ञ का आयोजन हुआ। देश के पीठाधीश्वर, मण्लेश्वर, विद्वान आमन्त्रित किये गये। गायत्री की कोटि आहुति का यज्ञ था। ब्रह्मचारी श्री जीवनदत्त जी को यजमान बनाया गया। दक्षिण के विद्वानों ने आपत्ति कर दी कि यजमान सपत्नीक ही होना चाहिये। कुश की कन्या से विवाह कराया गया। समागत अभ्यागतों के लिये बड़े-बड़े सिंहासन-मंच निर्माण किये गये। श्री उड़िया बाबा जी को बड़े आदर एवं आग्रह से आमन्त्रित किया गया। मैंने श्री करपात्री जी महाराज को कहा कि वे इन सिंहासनों पर तो बैठेंगे नहीं वे तो बिना आसन के धूल में भी बैठ जाते हैं। श्री करपात्री जी ने हँसकर कहा कि सिंहासन पर बैठना अथवा धूल में बैठना दोनों लोक-संग्रह ही है। लोक-श्रद्धा कभी वैभव की ओर जाती है, कभी त्याग की ओर। तत्त्वज्ञ की दृष्टि में कोई अन्तर नहीं है। वहाँ-जहाँ जैसे बैठेंगे, वही ठीक होगा। मुझे उनका यह दृष्टिकोण बहुत पसन्द आया।

उसी यज्ञ में एक दिन उन्होंने मुझसे कहा—"आओ, तुम भी मेरे साथ भिक्षा कर लो। किसी ब्रह्मचारी ने मूँग की दाल की खिचड़ी बनाई थी। नमक, न घी, छौंक तक नहीं लगी थी उन्होंने कहा, "तुम अपने अनुकूल भोजन कर लिया करो। मेरे साथ तो ऐसा ही मिलेगा।" उनकी उदारता देख-देख कर मैं मुग्ध होता रहता था।

उसी यज्ञ में आर्यसमाज के साथ शास्त्रार्थ का आयोजन हुआ। आर्य समाज की ओर से श्री रामचन्द्र देहलवी प्रमुख थे। सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थ महारथी श्री माधवाचार्य थे। सनातन धर्म के मंच पर श्री करपात्री जी महाराज, गिरिधर शर्मा, अनन्त कृष्ण शास्त्री, पंडित अखिलानन्द शर्मा आदि दिग्गज विद्वान विराजमान थे। मैं श्री करपात्री जी महाराज के ठीक पीछे बैठा हुआ था। यज्ञ में गोवध के सम्बन्ध में श्री करपात्री जी महाराज सरल भाव से श्रौत सूत्रों के अनुसार शास्त्रार्थ के लिए सन्नद्ध हो गये। सनातनधर्मी विद्वानों ने प्रार्थना की कि महाराज आप देखते रहिये, शास्त्रार्थ हम करेंगे। वे हँसकर चुप हो गये। सर्व श्री गिरिधर शर्मा, अखिलानन्द शर्मा एवं श्री माधवाचार्य

ने परस्पर विमर्श करके आर्य समाजियों से प्रतिप्रश्न किया—"वेदों में भला गोवध की बात कहाँ लिखी है ?" शास्त्रार्थ लिखित रूप से होता था और पढ़कर जनता को सुना दिया जाता था। आर्य समाज की ओर से मन्त्रों, भाष्यों और ग्रंथों का नाम लिखकर आया कि यहाँ-यहाँ शास्त्रों में गोवध की बात लिखी हुयी है। जन-समूह में पढ़कर सुनाया गया। पंडित अखिलानन्द जी ने खड़े होकर कहा—"देखो भाई, आर्यसमाजी लोग कहते हैं कि वेदों में गोवध लिखा हुआ है। कितने दुःख की बात है।" अब तो क्या था, सब जनता आर्यसमाजियों के विरुद्ध हो गयी। ताली पिटने लगी। लोगों ने उन लोगों का बोलना दूभर कर दिया। वे कहते ही रह गये, "यह हमने अपना मत नहीं बताया है। यह उन्हीं लोगों का मत है," पर वहाँ कौन सुनता था ? पंडित माधवाचार्य जी ने कहा, कि महाराज ! इन लोगों के साथ ऐसा ही शास्त्रार्थ होता है। कोई पूर्वोत्तर-मीमांसा के अनुसार अधिकरणरचना नहीं होती। श्री करपात्री जी की सरलता और सनातन धर्मीआर्यसमाजी के शास्त्रार्थ का एक अच्छा नमूना देखने को मिला।

श्री करपात्री जी महाराज में संघटन की एक विशिष्ट शक्ति थी वे अपनी निपुणता, बुद्धि-कौशल एवं सौजन्य से विरोधियों को भी अपने अनुकूल बना लिया करते थे मुझ पर उनका सहज स्नेह था। उन्होंने धर्मसंघ के अन्तर्गत सन्त-सम्मेलन का संगठन किया था, जिसमें अध्यक्ष थे वेद भगवान और उपाध्यक्षों में मेरा नाम भी था। लोगों ने मेरे व्याख्यान के लिये जब आग्रह किया और मैंने संकोच प्रकट किया तो भरी सभा में श्री करपात्री जी ने मुझे देखकर लोगों से कहा कि ये तो हमारे निधि हैं, इनको जैसे अनुकूल पड़े वैसे ठीक है, संकोच में डालने को आवश्यकता नहीं है।

सन १९४८ की बसन्त ऋतु में श्री करपात्री जी महाराज वृन्दावन पधारे थे। वे रमणरेती में श्री राधाकृष्ण धानुका की कोठी में ठहरे हुए थे वे उन दिनों पाँच या सात दिन तक गंगा जल पर रहने के बाद भिक्षा लेते थे। इतना मुझे अवश्य स्मरण है कि वे धानका जी की कोठी में एक साधारण से आसन पर बैठ जाते थे और मैं उन्हें श्रीमद्भागवत पर प्रवचन सुनाया करता था। प्रतिदिन सायंकाल का यह नियम ही हो गया था। जब वे सुन सुनकर प्रसन्न होते तो मेरे हृदय में आनन्द का समुद्र लहराने लगता था। सिद्धांततः अद्वैत एवं भावतः भक्ति का प्रतिपादन उन्हें बहुत प्रिय था। वे कभी-कभी गद्‌गद् हो जाया करते थे। यह निश्चित है कि वे वेदों से लेकर अवकहड़ा-चक्र एवं हनुमान चालीसा पर्यन्त के जानकर थे, सबको मानते थे, सबका समर्थन करते थे। उनको मुझसे श्रीमद्भागवत सुनने की कोई आवश्यकता नहीं थी, फिर भी यह उनका स्नेह ही था कि मुझे आदर देते थे। "अमानी मानदो मान्यः" का यह प्रत्यक्ष निदर्शन था।

श्री करपात्री जी महाराज, अन्य शास्त्रों के समान रस-शास्त्र के भी अप्रतिम विद्वान थे। जब वे रस-तत्त्व का प्रतिपादन करने लगते तो बड़े-बड़े रस-मनीषि भी आश्चर्य-चकित रह जाते थे। वे जब रस के सम्बन्ध में अनुमानवादी, प्रत्यक्षवादी एवं अपरोक्षवादी आचार्यों का खण्डन करते, श्री मधुसूदन सरस्वती के द्वारा भक्ति-रसायन में प्रतिपादित रस-तत्त्व के समर्थन में अपनी लोक-विलक्षण
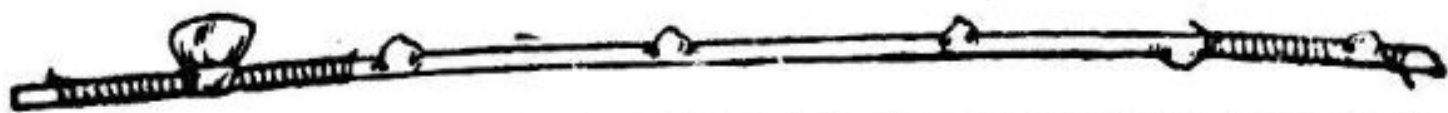
विचक्षण प्रतिभा को प्रकाशित करने लगते थे तब ऐसा कौन रस-मर्मज्ञ है जो मुग्ध न हो जाय ?

श्री करपात्री महाराज का मुझ पर कितना स्नेह था, इसका उदाहरण आपके सम्मुख प्रस्तुत है—

बम्बई वाले श्री प्रेमपुरी जी महाराज एवं दैवी-सम्पत-महामण्डल के अध्यक्ष स्वामी श्री शुकदेवानन्द जी महाराज से अत्यन्त गाढ़-सम्बन्ध होने के कारण, मैंने अखिल भारतीय भारत साधु समाज का अध्यक्ष पद स्वीकार कर लिया था। निश्चय ही वह संस्था उन दिनों भारत के गृहमन्त्री श्री गुलजारी लाल नन्दा की प्रेरणा और भारत सेवक समाज के कार्यकलाप से सम्बद्ध थी। मेरा अध्यक्ष होना श्री करपात्री जी महाराज को पसन्द नहीं था। मैं जब उनका दर्शन करने गया तो वे मुझ पर बरस पड़े "तुम इस सरकारी संस्था में क्यों सम्मिलित हुये ?" लगभग एक घन्टे तक वे मुझे समझाते रहे। उन्हों यहाँ तक कहा कि अच्छा, कोई बात नहीं, मैं अब ऐसे कहा करूंगा कि जैसे कांग्रेस में एक सम्पूर्णानन्द विद्वान है वैसे ही भारत साधु समाज में एक अखण्डानन्द हैं। उनके इस स्नेह को देखकर मैं कुछ बोल नहीं सका, चुपचाप प्रणाम करके चला आया। तब से साधु-समाज के प्रति मैं उदासीन हो गया और फिर किसी अधिवेशन में सम्मिलित नहीं हुआ।

नाम, रस, धाम और श्री राधा-कृष्ण के उक्त रस-रहस्यमय दिव्य निरूपण के साथ ही माहात्म्य-प्रकाश, मङ्गलश्लोक-व्याख्या, शुकागमन-शुक-परीक्षित-संवाद, प्रह्लाद-बलि-चरित, मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीरामभद्र और लीलापुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र की लीलाओं का मार्मिक दिग्दर्शन 'भागवत-सुधा' में मनोरम रीति से श्री स्वामी जी के श्री मुखारविन्द से अभिव्यक्त हुआ है।

धर्म और ब्रह्म के मर्मज्ञ श्री स्वामी जी ने भक्तिसुधा, भक्तिरसार्णव और भागवत-सुधा के माध्यम से लोकोत्तर अमलात्मा-मुनीन्द्र-श्रीमत्परमहंसों के जिस जीवन का अनुपम रीति से चित्रण किया है, उसके स्वयं मूर्तिमान स्वरूप ही थे। जीवन चरम-चरण में देश-काल-कलना-विमुक्त अखण्ड 'बोधरूप शिवतत्त्व के रूप में ही वे श्री वाराणसी केदारखण्ड में विराजमान थे। भागवत-कथामृत का पान करते अघाते नहीं थे। रोमांचकण्टकित प्रेमाश्रुपरिप्लुत उनके स्वरूप का वह मङ्गलमय दर्शन भावुक रसिकों के और रसज्ञों के हृदय में स्फुरित रहे।

'नित्या सरस्वती स्वार्थसमन्वितासीत्' यह उक्ति श्री स्वामी करपात्री जी महाराज के सम्बन्ध में पूर्ण रूप से चरितार्थ हुयी है। वेद वाणी और तदनुकूल समस्त शास्त्रों का जैसा समन्वित और समन्जस स्वरूप उन्होंने अपनी वाणी और लेखनी के द्वारा व्यक्त किया है, वह आत्मसात् करने योग्य है।

# अभिनव शंकर

—अनन्त श्रीसमलंकृत परम भागवत सन्त पूज्यपाद स्वामी श्रीविष्णु आश्रम जी महाराज,
दण्डी आश्रम, बिहारघाट, बुलन्दशहर (उ० प्र०)

**श्री शङ्कराचार्यनवावतारम् विद्वद्वरेण्यञ्च यतीन्द्रमुख्यम् ।**
**कलौयुगे यज्ञ-युगप्रवर्तकम् वन्दे सदा श्री करपात्रिणं गुरुम् ॥**

श्री करपात्री जी महाराज आदि शङ्कराचार्य जी के नूतन अवतार ही थे । विद्वानों में श्रेष्ठ यति-चक्र-चूड़ामणि तथा कलियुग में यज्ञों के प्रचार व प्रसार द्वारा त्रेता युग के प्रवर्तक थे । ऐसे उन महापुरुष का हम सदैव अभिवन्दन करते हैं ।

श्री करपात्री जी महाराज 'कारक पुरुष' थे । वे निरन्तर सत्कर्म में लगे रहते थे । रात्रि को दो बजे उठ जाते थे । रात्रि में ग्यारह बजे से पूर्व उनका सोना सम्भव नहीं होता था । सायं काल चार-पाँच बजे के लगभग केवल एक बार भिक्षा करते थे । उनकी भिक्षा में न लवण और न मीठा होता था । भिक्षा करके वे पाँच मिनट के लिये भी विश्राम नहीं करते थे । भिक्षा के तुरन्त बाद प्रवचन करने चल पड़ते थे । उनके यहाँ प्रमाद या आलस्य का नाम ही नहीं था । छह-छह घण्टे निरन्तर सभा में बैठे रहते थे, किंतु कभी किसी ने उनको निद्रित नहीं देखा । उनमें इतना विलक्षण सत्त्व का उद्रेक था ।

सनातन धर्म की व्याख्या उनकी अत्यन्त स्पष्ट थी । यथा, सनातन परमात्मा ने सनातन जीवों के कल्याण के लिए सनातन वेदों के द्वारा जो सनातन विधान बनाया है, वही सनातन धर्म है । शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्ताहंकार की शास्त्र के अनुकूल जो हलचल है, चेष्टा है वही धर्म है । तथा शास्त्र के प्रतिकूल इनकी जो हलचल है, चेष्टा है, वह अधर्म है । इन शब्दों में वे धर्माधर्म का निर्णय करते थे । उनके जैसी वक्तृत्त्व शक्ति तो कहीं देखने में ही नहीं आती । एक बार वृन्दावन में वेणुगीत पर प्रवचन कर रहे थे जिसको सुनकर वहाँ के विद्वान् और रसिकजन मन्त्रमुग्ध हो जाते थे ।

स्वामी जी महाराज की स्मरण शक्ति अद्भुत थी । उनके पास कभी हमने नोट बुक नहीं देखी । जो श्लोक जहाँ देखा, वहीं याद हो गया । जब श्री महाराज जी प्रवचन करते थे, उस समय वेदान्ती लोग ब्रह्म का अद्भुत निरूपण सुनकर मुग्ध हो जाते थे और भक्त लोग भगवल्लीला-कथा-रस में डूब जाते थे । धर्मात्माजन धर्म की व्याख्या सुनकर अपने को कृतकृत्य मानते थे । साधारण लोग तो उनकी मङ्गलमयी वाणी को सुनकर ही आनन्द का अनुभव करते थे । भगवान् श्रीकृष्ण के वैकुण्ठ चले जाने पर पाण्डवों के लिए पृथ्वी जैसे शोभाहीन, अमङ्गलमयी दिखायी देती थी, उसी प्रकार श्री महाराज जी के न रहने पर पृथ्वी शोभाहीन और अमङ्गलमयी दिखायी दे रही है ।

श्री महाराज जी को प्रायः सभी सम्प्रदायों के लोग मानते थे । सभी उनका आदर करते थे । वृन्दावन वाले श्री अखण्डानन्द जी महाराज कहा करते हैं कि धर्म और ब्रह्म का निरूपण जैसा श्री करपात्री जी महाराज करते हैं, वैसा इस समय कोई और नहीं कर सकता । देहली, कानपुर, काशी,
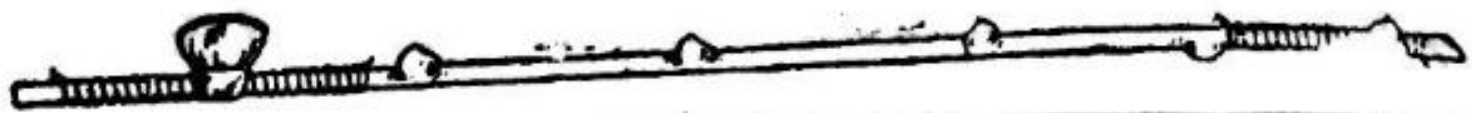
बम्बई आदि महानगरों में विशाल यज्ञों का आयोजन करके महाराज ने कलियुग में भी त्रेतायुग का दृश्य उपस्थित कर दिया था। उन यज्ञों का जिन लोगों ने दर्शन किया है, वे ही श्री महाराज जी की महिमा को समझते हैं।

साधारण जनता में ख्याति प्राप्त करने वाले अनेक सन्त हैं, किन्तु उच्च कोटि के विद्वानों में श्री महाराज ने ही प्रतिष्ठा प्राप्त की। पण्डित लोग प्रायः किसी की कथा या प्रवचन नहीं सुना करते, किन्तु महाराज जी के कथा-प्रवचन को सुनने के लिए बड़े-बड़े विद्वान् भी लालायित रहते थे। वैसे श्री महाराज बड़े तितिक्षु, सहनशील और सरल थे, किन्तु यदि कोई धर्म के विरुद्ध, शास्त्र के विरुद्ध बोले या लेख लिखे तो यह उनसे सहन नहीं होता था। तत्काल उसका खण्डन कर देते थे, चाहे वह कितना भी प्रभावशाली व्यक्ति हो।

धर्म रक्षा के लिये, गो रक्षा के लिये महाराज जी ने अनेक कष्ट सहे, अनेक बार जेलों में गए, इस बात को सभी लोग जानते हैं। 'नानशनात् परं तपः', अर्थात् अनशन से बढ़कर दूसरा कोई तप नहीं है, इसका श्री महाराज जी ने अपने जीवन में विशेष रूप से पालन किया। हमने देखा है कि श्री महाराज जी एक वर्ष में अड़तालीस दिन केवल फलाहार करते थे। सात दिन तक कुछ न लेना, इसके बाद श्री सत्यनारायण की कथा सुनकर प्रसाद ग्रहण करना, वह भी फलाहार होता था। उन दिनों में भी तीन पाठ दुर्गा सप्तशती के करना, श्री मद्भागवत का सप्ताह पारायण करना, जप करना, जिज्ञासुओं से वार्तालाप करना, व्याख्यान देना, ये सभी कार्य भी निर्विघ्न रूप से चलते रहते थे। यह विलक्षणता अन्यत्र कहीं भी देखने को नहीं मिली।

स्वामी जी महाराज भारतवर्ष के पवित्र तीर्थों में पहले पैदल ही भ्रमण किया करते थे। अङ्ग-प्रत्यङ्ग अत्यन्त कोमल होने पर भी भूख, प्यास, शीतोष्ण सब कुछ सहन कर लेते थे। साथ में जो सेवक रहते थे, वे भी विरक्त भाव से ही सेवा-कार्य करते थे। मार्ग में भिक्षा का समय होते ही वे ब्राह्मणों के यहाँ से आटा माँगकर लाते थे और भिक्षा बनाकर, महाराज जी को भिक्षा कराकर तथा स्वयं भोजन करके आगे के लिये चल पड़ते थे। एक बार ऐसा हुआ महाराज तो भिक्षा करके तत्काल चल दिये, ब्रह्मचारी लोग भोजन करते रहने के कारण बहुत पीछे रह गये। तब उन्हें मार्ग में लोगों से पूछना पड़ा कि इधर से कोई महात्मा तो नहीं गये हैं। तब एक व्यक्ति ने कहा कि मैंने उनको देखा तो नहीं है, किन्तु चरण चिन्हों से मालूम होता है कि इस मार्ग से गये हैं। यह रेखा जो दिखाई दे रही है, वह विशिष्ट महापुरुषों के चरणों में ही होती है। आप लोग इसी मार्ग से जाओ, श्री स्वामी जी आपको मिल जायेंगे। ऐसा ही हुआ।

एक बार बैरागियों के यहाँ महाराज जी सहित सब लोग ठहर गये। ठण्डी का समय था। एक बैरागी ने अर्द्ध रात्रि के लगभग शंख बजा दिया। महाराज उठ गये और साथियों को भी उठा दिया। शौचादिक के लिये नदी के किनारे जंगल में चल दिये। वहाँ जाकर देखा कि अभी रात्रि बहुत है। तब सभी लोग वहीं नदी-तट पर सो गये। महाराज तो एक बहुत पतला वस्त्र रखते थे, उसी को
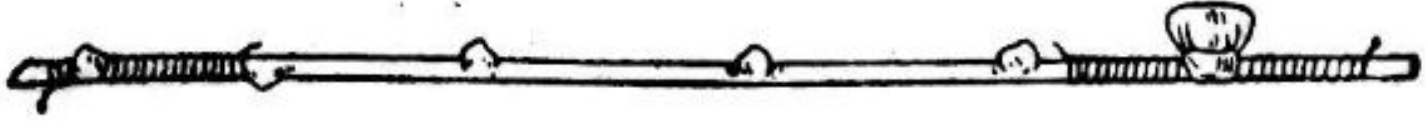
ओढ़ लिया। जब प्रातः उठने लगे तो उठा नहीं गया। शरीर ठण्डी से जकड़ गया। तब दो व्यक्तियों ने पकड़ कर शौच जाने के लिये बिठाया तथा जल पास में रख दिया। जब शौच से निवृत्त हो चुके तो कहा कि अब हमें उठाकर नदी के जल में गोता लगवाओ। उसी समय दो महात्माओं ने पकड़ कर अत्यन्त शीतल नदी के जल में शरीर को डुबो दिया। इस प्रकार जब स्नान कर चुके, कौपीन आदि धारण कर ली फिर कन्धों पर रखकर नदी किनारे से ब्रह्मचारी लोग उनको वापिस ले आये। महाराज ने कहा कि हमें वहाँ ले जाकर बिठा दो जहाँ प्रवचन करना है। उन्होंने ऐसा ही किया। पहले से ही सभा- स्थल में महाराज जी को बिठा दिया। समय पर लोग आये तथा प्रवचन हुआ, जिससे सभी लोग बहुत प्रभावित हुये। जब यह पता चला कि इनका शरीर ठण्डी से जकड़ा हुआ है तो वैद्यों ने उपचारादिक उपायों से उनका शरीर ठीक किया। पर्वतों पर चलते-चलते जब उनके चरणों से रक्त निकलने लगता तो वे वस्त्र लपेट लेते थे, किन्तु पादुका नहीं धारण करते थे। श्री महाराज का जीवन इस प्रकार तपोमय था।

वे जहाँ जाते थे, वहीं अपार जनसमूह इकट्ठा हो जाता था। उनके दर्शन करके जनता अपने को कृतकृत्य मानती थी। प्रवचन सुनकर सहस्रों व्यक्तियों के सन्देह निवृत्त हो जाते थे। उनके द्वारा लिखे गये ग्रंथों को पढ़कर यथार्थ वस्तु का बोध होता है। श्री महाराज में अनेक दिव्य गुण थे, उनका कौन वर्णन कर सकता है? प्रश्न करने वाले के अभिप्राय को तत्काल समझ लिया करते थे। एक दिन हमने प्रश्न किया कि महाराज के दर्पण के सामने जो वस्तु होती है उसी वस्तु का दर्पण में प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। दर्पण के पीछे जो वस्तु होती है उसका दर्पण में प्रतिबिम्ब दिखायी नहीं देता। इसी तरह अन्तःकरणावच्छिन्न जो चेतन है, उसके अनुभव की अपरोक्ष की बात तो समझ में आती है, किन्तु अन्तःकरण के रहित जो व्यापक चेतन है, उसका अनुभव कैसे सम्भव हो सकता है? महाराज जी हमारे अभिप्राय को तत्काल समझ गये और कहने लगे कि जैसे घट में जो आकाश है, वह घट के नष्ट होने पर महाकाश का रूप धारण कर लेता है, उसी प्रकार अभ्यासातिशय से अन्तः करण की अत्यन्त उपेक्षा हो जाने पर अनन्तापरिच्छिन्न चेतन का अनुभव होने लगता है। यह उत्तर सुनकर हमको बड़ा सन्तोष मिला। महाराज ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मनिष्ठ और ब्रह्मस्वरूप ही थे। भगवान् से हम प्रार्थना करते हैं कि महाराज के वियोग से व्याकुल जिनका हृदय है, उन भक्तों को शान्ति प्रदान करें।

●●

## अद्भुत-शास्त्रार्थी-विद्वान

—१००८ श्री स्वामी सिद्धेश्वराश्रम (दण्डी स्वामी) जी महाराज,
उड़िया बाबा का आश्रम दावानल कुन्ड, वृन्दावन।

स्वामी करपात्री जी विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न महात्मा थे। उनकी विद्या केवल इस जन्म में ही प्राप्त की हुयी विद्या नहीं थी अपितु पूर्वजन्मों के संस्कारों से प्राप्त विद्या थी। उनकी बुद्धि बड़ी विलक्षण थी। एक बार हमारे पूज्य गुरुदेव ब्रह्मलीन उड़िया बाबा जी, करपात्री जी, रामदास जी और हम एक स्थान पर वृन्दावन में ही चारों बैठे थे। श्री उड़िया बाबा जी ने करपात्री जी से पूछा कि "बेटा। यह आचार्यों की वाणी तू कैसे बोल लेता है तुझे कैसे आ गयी बोलनी क्योंकि श्री बल्लभाचार्य जी आदि विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों की वाणी तो वह केवल भक्तों को और वह भी बन्द कमरे में बैठकर सुनाते हैं तूने कहाँ से सीखी ?" इस पर करपात्री जी ने कहा कि "महाराज अनूप-शहर के एक पण्डित जी यहाँ उनके मन्दिर में थे उन्होंने आचार्य की वाणी की पुस्तक मुझे दी तो मैंने उसे पढ़कर तुरन्त लौटा दी थी। बस इस प्रकार वह मुझे कण्ठस्थ हो गयी।" इस प्रकार की विलक्षण स्मृति थी करपात्री जी की थी, जो भी एक बार पढ़ लेते थे उन्हें याद हो जाता था। वह जितने वेद शास्त्रों के मर्मज्ञ थे उतने ही तपस्वी भी थे। शास्त्रों में उनकी अगाध एवं एकान्त निष्ठा थी। मैं उनके साथ भी रहा हूँ और तब रहा हूँ जब उन्होंने दण्ड भी ग्रहण नहीं किया था। हमने दो शास्त्रार्थ स्वयं देखे हैं उनमें एक तो मालवीय जी के साथ दूसरा अन्यत्र। उन शास्त्रार्थों का संक्षिप्त याथातथ्य विवरण यहाँ प्रस्तुत है।

ऋषिकेश की कोयल घाटी में महात्मा मदन मोहन मालवीय जी से उनका शास्त्रार्थ लगभग ५१-५२ वर्ष पूर्व हुआ था उस समय मैं भी वहीं बैठा था। सारा वार्तालाप मेरे समक्ष हुआ था। मैं उस समय दण्डी संन्यासी था और उन्होंने तब तक संन्यास दीक्षा नहीं ली थी। वहाँ उपस्थित महानुभावों में गीता प्रेस के भक्त सेठ जयदयाल गोयनका तथा खुर्जा के सेठ गौरी शंकर गोयनका भी थे। उस समय स्वतन्त्रता आन्दोलन का जमाना था। अछूतोद्धार की हवा चल रही थी। मालवीय जी ने यह सामयिक प्रश्न उठा दिया कि "प्रणवयुक्त वेद मन्त्रों में शूद्र-चाण्डाल का भी अधिकार है उन्हे इसका उपदेश दिया जा सकता है।" स्वामी करपात्री जी ने इस पर कहा कि "शास्त्रों में इसका निषेध है। शूद्र को सामने बैठा कर, सामने रखकर वेद मन्त्र नहीं कह सकते, इधर-उधर बैठकर सुन सकता है।" इस पर पर्याप्त शास्त्रार्थ हुआ और पक्ष-विपक्ष में मालवीय जी और करपात्री जी ने प्रबलतम शास्त्रीय प्रमाण उपस्थित किये। इसी बीच सायंकाल हो गया मालवीय जी के साथ आये उनके नौकर ने उन्हें घड़ी दिखायी कि चलो समय हो गया है। मालवीय जी ने उससे कहा कि अब चलना कैसा ? अब तो चाहे तीन दिन हो जाएँ शास्त्रार्थ निर्णय होने पर ही जायेंगे—बीच में चलना कैसा ? उपस्थित समुदाय में सन्त, महात्मा. विद्वान, गृहस्थ, स्त्री-पुरुष सब ही थे—उन्हें अपने-अपने

स्थानों पर पहुँचने की जल्दी थी। उनमें से कुछ खड़े हुये और कहने लगे कि "महाराज आप क्या कहते हैं। आप तो दिग्गज हैं जो बिजारों की भांति लड़ते रहो हमें तो जाना है। फिर निश्चय हुआ कि कोई मध्यस्थ होने चाहिये जो निर्णय करें। करपात्री जी से पूछा कि कौन मध्यस्थ बनाया जाए ? तो इस पर उन्होंने कहा कि मेरी ओर से कोई भी मध्यस्थ हो सकता है कोई आपत्ति उन्हें नहीं होगी। कितनी उदारता आत्मविश्वास एवं शास्त्रनिष्ठा थी उनमें। कितनी महानता थी उनकी। श्री गौरी शंकर गोयनका खुर्जा वाले को मध्यस्थ बनाया गया। तो उन्होंने खड़े होकर कहा कि मैंने व्याकरण मध्यमा तक पढ़ी है, शास्त्रों का भी अवलोकन किया है श्री गौरी शंकर गोयनका ने कहा कि करपात्री जी महाराज ठीक कह रहे हैं वे शास्त्रों का जो पक्ष रख रहे हैं वह ठीक है। फिर मालवीय जी की ओर से भी जयदयाल गोयनका जी को कहा गया निर्णय देने के लिये वे खड़े हुये उन्होंने कहा कि एक प्रकार से म्हारी बुद्धि के बीच के मांहि ऐसो बात आवे है कि सुना भी सकते हैं और नहीं भी और वह तुरन्त बैठ गये। लोगों ने कहा यह नहीं चलेगा। कि दोनों के भले बने रहो फिर उन्हें स्पष्ट निर्णय देने को खड़ा किया गया तो जयदयाल जी ने कहा कि शास्त्रों में ऐसा आता है कि शास्त्रों को सुना सकते हैं परन्तु जोर से कहा ऐसा आता है कि नहीं भी सुना सकते। इस पर मालवीय जी ने रोकर कर कहा कि स्वामी जी आपका कथन शास्त्रानुसार ठीक है—परन्तु समय ऐसा आयेगा कि आने वाले समय में बात हमारी माननी पड़ेगी। इस पर करपात्री जी ने कहा कि हमारा-आपका आज शास्त्रार्थ है आने वाले समय के मानने न मानने की बात नहीं थी। इस पर मालवीय जी ने मौन होकर पराजय स्वीकार कर ली कि शास्त्रीय पक्ष तो आपका ही ठीक है।

एक दूसरा अवसर पुनः उपस्थित हुआ शास्त्रार्थ था। अमनोई गांव है अलीगढ़ जनपद में। सारा गांव आर्य समाजियों का है। वहाँ के राजा थे शंकरपाल सिंह वे भी हमारे गुरुदेव पूज्य उड़िया बाबा जी को ही गुरु मानते थे। उनकी बड़ी सेवा करते थे। उन्होंने श्रीमद् भागवत का सप्ताह करवाया—गुरु जी को भी बुलाया अन्य महात्मा विद्वान भी बुलाये गये थे। उन्होंने अपने को गड़ी, वृन्दावन आदि आर्य समाज के अनेक गुरुकुलों के स्नातकों को भी बुला रखा था। हम भी थे और करपात्री जी भी गये थे। पं० जीवन दत्त जी ब्रह्मचारी नरवर वाले भी विद्यमान थे। आर्य समाजियों ने कहा कि शास्त्रार्थ होगा सनातन धर्म से—विषय रखा गया कि जाति कर्म से हो। पूज्य गुरुदेव उड़िया बाबा जी ने कहा कि ठीक है शास्त्रार्थ करो। दोनों पक्ष के लोग बैठे। आर्य समाजियों ने अपना पक्ष रखते हुये वेद का यह श्लोक बोला और बार-बार इसी श्लोक को बोले और कहा कि ब्राह्मण भगवान के मुख से उत्पन्न हुये हैं, क्षत्रिय बाहु से, वैश्य पेट से और शूद्र पैरों के समान हैं। इसी को वे लोग बार-बार कहते रहे। तब करपात्री जी ने कहा कि ऐसा हम नहीं मानते। जिस मन्त्र का अर्थ अक्षरों में से ही निकला कि जाति जन्म से है या कर्म से है। वही ठीक है। करपात्री जी ने पूछा कि संस्कार पद्धति आपकी और हमारी एक ही है या अलग-अलग ? आर्य समाजी ने कहा कि संस्कार पद्धति तो एक ही है। इस पर करपात्री जी ने कहा कि जब यज्ञोपवीत होता है

तब मन्त्र बोला जाता है "अष्ट वर्षं ब्राह्मणं उपनयेत", दोनों पद्धतियों में यही अर्थ है कि ब्राह्मण
का अष्ट वर्ष में जनेऊ होना चाहिये। यह नहीं कहा कि ब्राह्मण के लड़के का जनेऊ अष्टम वर्ष होना
चाहिये। उन्होंने कहा कि वह तो ब्राह्मण ही है अष्ट वर्ष का। अतः "अष्टवर्षं ब्राह्मणं उपनयेत"
कहा कि आठ वर्ष के ब्राह्मण का अथवा आठ वर्ष में ब्राह्मण का जनेऊ होना चाहिये। इस पर जन्म
से ही ब्राह्मणादि जाति होना सिद्ध हो गया। आर्य समाजी बन्धुओं ने स्वीकार किया और कहा कि
हम तो समझते थे कि आर्य समाज में ही पण्डित हैं परन्तु अब हम मान गये कि सनातन धर्म में भी
बड़े-बड़े विद्वान हैं जो शास्त्रार्थ को ठीक-ठीक ढंग से कर सकते हैं।

करपात्री जी की इस पर बड़ी प्रशंसा हुयी और उनकी अलौकिक प्रतिभा एवं बुद्धि प्राखर्य का सभी ने लोहा माना।

शास्त्रार्थ के उपर्युक्त दो प्रसंग हमारे सामने हुये और दोनों ही में हमने उनकी विलक्षण प्रतिभा को अनुभव किया। वर्तमान शताब्दी में उनके जैसा विद्वान, वेद शास्त्रों का ज्ञाता, व्याख्याता, शास्त्रों का मर्मज्ञ शायद ही कोई दूसरा हुआ है।
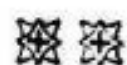
[ "जैसे अनन्त महौषधियों के पारस्परिक सम्प्रयोग-विप्रयोग जन्य (अनेकों महौषधियों के परस्पर संयोग और वियोग से उत्पन्न हुयी) शक्तियों के अभिभव या प्रादुर्भाव के विवेक का विज्ञान अन्वय-व्यतिरेकादि लौकिक युक्तियों से शत जन्म में भी नहीं हो सकता, किन्तु केवल सर्वज्ञ-महर्षि-प्रणीत आयुर्वेदशास्त्रों से ही होता है। तद्वत् वर्णों के विचित्र संश्लेष-विश्लेषजन्य अचिन्त्य अद्भुत अलौकिक शक्तियाँ भी शास्त्रों से ही जानी जाती हैं। जैसे केवल एक श्रोत-इन्द्रिय से ही ग्रहण होने वाला 'शब्द' चक्षुरादि इन्द्रियों से अग्रहीत हुआ भी अप्रमित (अप्रमाणित) नहीं कहा जा सकता, वैसे ही केवल शास्त्रों से ही ज्ञात होने वाली और अन्य प्रमाणों से अप्रसिद्ध वस्तु भी अप्रमित नहीं कही जा सकती।" ] —करपात्र स्वामी

# धर्मसम्राट् श्री करपात्र स्वामी—अलौकिक महापुरुष

श्रीमत्परमहंस परिव्राजक १००८ पूज्य स्वामी श्री नन्दनन्दनानन्द सरस्वती जी महाराज,
प्रधान सम्पादक, दैनिक सन्मार्ग, काशी।

षोडशानन्दनाथो मे लोक लोकैक भास्करः।
ज्ञानाम्बाश्लिष्ट सच्छक्तिश्चित्सुखैकैक विग्रहः॥
स एव ललिता रूपस्तद्रूपा ललिता स्वयम्।
न तयोर्विद्यतेभेदो, भेदकृत्पापकृद् भवेत्॥
योगतन्त्राब्धिहंसाय षोडशीसंविदात्मने।
वेदवेदांतवेद्याय करपात्रगुरवे नमः॥

माघ शुक्ल चतुर्दशी रविवार तदनुसार ७ फरवरी १९८२ को प्रातः ९ बजे इस अलौकिक लीला का सम्वरण हुआ।

जन्म कर्म च मेदिव्यमेवंयोवेत्ति तत्वतः।
त्यक्तवादेहं पुनर्जन्मनैति मामेतिसोर्जुन॥

आत्मा की अमरता सभी मतों में मान्य है फिर भी अज्ञानी देहतादात्म्य भावना से जन्म और मरण के बन्धन में आता है। ज्ञानी देहाध्यास का परित्याग कर इस संसार चक्र से बाहिर निकल जाता है, इस कारण जीवित अवस्था में जीव-मुक्त और देह त्यागानन्तर घट भंग की अवस्था में घटाकाश के महाकाश में विलय के समान नित्य शुद्ध मुक्त आत्म स्वरूप में विलीन हो जाता है। इसे ब्रह्मनिर्वाण कहा गया है। हंस नीरक्षीर विवेक के समान आत्माऽनात्मविवेक कर चित्सदानंद में सदा विलीन रहता है। जैसे सर्प अपनी केचुल को वल्मीक में स्वयं छोड़कर उसे स्वयं देखता है, वैसे ही ज्ञानी इस कल्पित पांच भौतिक स्थूलसूक्ष्म देहभाव और अनाद्यविद्याकल्पित कारण देहभाव को फेंक कर 'चिदानंदाभिख्यं रसयतिस्सांचन्दजनवान्' चिदानंद रस का रसास्वादन करता है। संसारी प्राणी जिस शरीर निर्गमन यात्रा को मृत्यु समझकर भयभीत, असहाय और दुःखग्रस्त होता है, वहीं पर परमहंस चिदानन्द रस के आस्वादन का रसास्वादन करता हुआ मृत्यु प्रलय का साक्षी बनकर मृत्यु को सदा के लिये समाप्त कर सदा सदानन्द, सदा चिदानन्द और सदास्वात्मानन्द में निमग्न हो जाता है। बृहदारण्यकी श्रुति में कहा है, 'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति आत्मैव समवलीयते' आत्माराम, परमनिष्काम आप्तकाम ब्रह्मज्ञ के प्राणों का उत्क्रमण ही नहीं होता, सर्वोपाधि विवर्जित, सर्वपरिच्छेद शून्य हो इसी लोक में समस्त आवरणों का क्षय कर अपरिच्छिन्न नित्यसत्, नित्य चित् तथा नित्यानन्द में विलीन हो जाते हैं। इस कारण परमपूज्य अनन्त श्री स्वामीचरण परमहंस गति में सदा विलास कर स्वेच्छ यार्जितदेहत्रयाध्यासका परित्याग कर अपने नित्यमुक्त, शुद्धबुद्धस्वरूप में विलीन हुये। ऐसी

महाविभूति के सम्पर्क से भूतधात्री वसुन्धरा पुण्यवती हुयी और जो जीव इस महाविभूति के सम्पर्क में आये उनका सम्पर्क भी अवश्य अमोघ हो गया।

'महत्संगस्तु दुर्लभो अगम्यो अमोघश्च' महापुरुष समागम दुर्लभ जीव सामान्य की इच्छा तथा अहं शक्ति से अगम्य परन्तु परिणाम में सर्वथा अमोघ होता है। इस जीवित दृष्टिबिंदु से पूज्यपाद स्वामिवर्य केवल परब्रह्म हैं, परन्तु देखने वाले के दृष्टिबिंदु में 'Sub Specieleternitis' शाश्वत तत्वान्वेषण की दृष्टि वाले व्यक्ति ही शाश्वत तत्व को देखने के इच्छुक हो सकते हैं और उन सहस्रों में कोई एक उस तत्व का साक्षात्कर्त्ता होता है, शेष लोग सीमित दृष्टि सम्पन्न होने के कारण सीमित व्यक्तित्व ही देख पाते हैं। आदि अन्त के दो बिन्दुओं में सम्बन्ध रेखा यह सांसारिक जीवन हैं, इन बिन्दुओं के वार असीम है, जिससे सामान्य जीव का प्रयोजन दीखने के कारण उसकी उपेक्षा करता रहता है।

अवजानन्ति मां मूढ़ामानुषी तनुमाश्रितम्।
परंभावमजानन्तो ममभूत महेश्वरम्॥

सर्वभूत महेश्वर के परम भाव को न जान सकने के कारण संसारी प्राणी उसे हाड़चाम का मानुष समझता हुआ अवज्ञा कर सकता है। किंतु इस महाशक्ति के मानवोत्तर चमत्कार भी अनन्त हैं और उनके कृपापात्र ही उन्हें जानते हैं।

धर्मसम्राट् स्वामी श्री करपात्री जी का इन्हीं आदि अन्त के दो बिन्दुओं में प्राय: ७५ वर्ष की अवधि रेखा में सम्बद्ध जीव घटाकाश महाकाश आदि के समान कभी अपने असीम महाकाश से पृथक नहीं हुआ। आद्य भगवत्पाद शंकराचार्य के समान इस व्यक्तित्व में भी गागर में सागर भरा ही रहा। जगत की विविधता को देखते इस महापुरुष की निस्सीम शक्ति भी अनेक क्षेत्रों में फूटकर प्रसारित हुई। सौर मण्डल के केन्द्र निश्चयन के समान जर्मनी के प्रोफेसर इमानुअलकांट तथा कोपर्निकस परिवर्तन के प्रतिस्पर्धी हो स्वामी करपात्री की प्रतिभा विश्व की सभी विद्याओं, कलाओं तथा राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक, आर्थिक आदि सभी व्यावहारिक अथवा पारमार्थिक कार्यकलापों का वास्तविक केन्द्र सर्वभूतांतरात्मा परब्रह्म को माना और उसी की सभी प्रकाशरश्मियों का प्रसार सभी क्षेत्रों में किया। उनकी सरस सरस्वती रसमय परब्रह्म से प्रसारित प्रथम 'भगवत्तत्व' के रूप में अवतीर्ण हुई, तदनन्तर अनादि निधनावाक् वेदवाणी के शाश्वत चिन्मय रूप की व्याख्या के रूप में प्रफुल्लित हुई।

उसी का क्रियात्मक रूप भारत की राजधानी दिल्ली का ऐतिहासिक शतमुख कोटिहोमात्मक महायज्ञ विश्व ने देखा जो विगत दो सहस्र वर्षों में महाराज समुद्रगुप्त के अश्वमेध के अनन्तर नहीं देखा गया। तदनन्तर काशी, कानपुर, उदयपुर, दिल्ली, बम्बई आदि स्थानों में यज्ञों, महायज्ञों, लक्षदण्डी, अतिरुद्र आदि यज्ञों की एक शृंखला ही बंध गयी और उस भौतिकता के बोलबाले में यज्ञ के विरोधियों ने भी यज्ञ करने आरम्भ कर दिये।

इसी समय "संघे शक्तिःकलौ युगे' शास्त्र विश्वासी परम्परावादी आस्तिक जनभावना की रक्षा के लिये अखिल भारतबर्षीय धर्मसंघ की नींव डाली गयी और इस अलौकिक महापुरुष ने आसेतु हिमाचल पदयात्रा में रामेश्वर से श्रीनगर, काश्मीर और अफगानिस्तान की सीमा खैबरपास लण्डी-कोतल, लण्डीखाना, पेशावर, कुर्रमपारा चिनार, बावू, कोहाट तक धर्मसंघ की शाखाओं का एक जाल फैल गया और आस्तिक-नास्तिक जगत को आश्चर्य चकित करने वाले धर्मसंघ के जयघोष 'धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो. प्राणियों में सद्भावना हो और विश्व का कल्याण हो' भारतीय वायु मण्डल में गूंज उठे। विश्व महायुद्धों से कटे-फटे, द्वितीय विश्व महायुद्ध के परमाणु अस्त्रों से संत्रस्त विश्व ने प्रथम बार विश्व का कल्याण हो का जयघोष सुना तथा शाँति की आशा का अनुभव किया। इन चारों जयघोषों का गम्भीर अर्थ पृथक लेख का विषय है, किन्तु विश्व कल्याण केवल प्राणिमात्र के प्रति सद्भावना से ही सम्भव है वह धर्म, सत्य, परलोक और परमेश्वर की भावना बिना सम्भव नहीं है। वहाँ अधर्मी अथवा विधर्मी के प्रति भी दुर्भावना नहीं केवल अधर्म रूप रोग के नाश की ही प्रार्थना है, अधर्मी के नाश की कामना नहीं।

परमपूज्य स्वामी जी की दैनिकचर्या अति व्यस्त रही। आप रात्रि में प्रायः १-०, १-३० बजे उठ जाते। प्रायः ४ बजे प्रभात तक प्रातः पाठ, पूजन ध्यान आदि से निवृत्त होकर भ्रमण के लिए जाते मार्ग में पाठ करते रहते। वहाँ से लौटकर पुनः पूजन में व्यस्त हो जाते। तदनन्तर गोता, उपनिषद् तथा अन्य वेदांत ग्रंथों का अध्यापन पाठ होता। लोगों के चले जाने पर पुनः ग्रंथ लेखन, भाषण आदि कार्यों में व्यस्त रहते। सायं ५ बजे से पुनः दर्शनार्थियों का तांता बंध जाता और सायं सन्ध्या में पुनः पूजन, रुद्राभिषेक आदि में संलग्न रहते।

महाराज श्री के भाषणों के गाम्भीर्य तथा प्रभाव को वही लोग जानते हैं जिन्होंने सुना है। प्रारम्भ में संस्कृत गर्भित दुरूह भाषा से लेकर अन्तिम दिनों में अत्यन्त सरल सरस भाषा में गूढ़तम शास्त्रीय, धार्मिक तथा राजनीतिक तत्वों की अभिव्यक्ति आपके भाषणों की विशषता थी। वृन्दावन धाम के गोस्वामी तथा अन्य प्रकाड पण्डित श्री स्वामी जी महाराज की रासपंचाध्यायी रस के रसविभोर मधुप रहे। काशी के प्रकांड पण्डित, आचार्य और महामहोपाध्याय श्री स्वामी जी कृत शास्त्रीय व्याख्या के प्रति नतमस्तक रहे और ग्रंथाध्ययन के लिये कितनी बार आते। वाराणसेय सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय आदि विश्वविख्यात् शिक्षा केन्द्रों में पूज्य स्वामी जी की व्याख्यान मालाएं हुई, जिन्हें उन संस्थाओं ने विविध मार्गों से लिपिबद्ध, मुद्रित और प्रसारित भी किया।

श्री करपात्री स्वामी की लेखनी भगवती सरस्वती के सरस पद-विन्यास से सुषोभित सुधा-रसगर्भित भक्ति सुधा से लेकर गूढ़तम वैदिक कर्म कांड दार्शनिक, सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र को आलोकित कर चुकी है। वेद प्रामाण्य मीमांसा, 'वेदार्थ पारिजात' आदि ग्रंथ वैदिक संस्कृत के लोकोत्तर उत्कर्ष, अकाट्य युक्तियों के आधार पर पाश्चात्य तथा प्राच्य आक्षेपकर्ताओं के मदमर्दन तथा

वैदिक कर्म कांड, सनातन दार्शनिक दृष्टिकोण की अनुपम व्याख्या तथा सनातन हिन्दू संस्कृति, वैदिक धर्म, आध्यात्मिकता तथा वर्णाश्रम धर्म का लोकोत्तर महिमा से अनुप्राणित है। 'रामायण की मीमांसा' श्री स्वामी जी महाराज की अद्वितीय कृति न केवल आर्य इतिहास की पोषक है, प्रत्युत फादर बुल्के जैसे ईसाई मिशनरियों की भ्रामक राम-कथाओं का युक्ति पूर्ण खण्डन और रामायण महिमा का अद्भुत प्रतिपादक ग्रंथ है। स्वर्गीय श्री गोलवल्कर की विचार नवनीत द्वारा हिन्दू धर्म, समाज, वर्णाश्रम मर्यादाओं के विकृतरूप का प्रतिपादन तथा वीरसावरकरके हिन्दू इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ आदि भ्रामक साहित्य का संशोधन तथा सम्मार्जन पूज्य स्वामी जी के विचार पीयूष नामक ग्रंथ में जिन अकाट्य युक्तियों से हुआ है वह केवल मर्मज्ञ संस्कृतज्ञों एवं शास्त्रज्ञों के सन्तोष का विषय है।

भारत की राजनीतिक क्षेत्र इस समय पाश्चात्य भौतिकवादी अन्ध परम्परा से ओतप्रोत है। नैतिक मूल्यांकन, सत्य, धर्म, परलोक, परमात्मा का प्रायः उनमें स्थान नहीं है। प्रौढ़तम प्रतिष्ठित तथा धन, जन, शासन बलपूर्ण राजनीतिक संस्थाएँ भी प्रायः राजनीतिक दर्शन शून्य हैं। भौतिकवाद के प्रवाह में फ्रांसीसी क्रांति (French Revolution) ने जिन समानता, स्वतन्त्रता तथा भ्रातृता के उद्‌घोषों को जन्म दिया, उनका भी अन्धानुकरण हुआ। प्रथम बार कार्ल मार्क्स के 'कपिटल' में ही साम्यवाद और समाजवाद की भौतिक व्याख्या दार्शनिक आधार पर हुयी। पूज्य स्वामी जी का 'मार्क्सवाद और रामराज्य' राजनीतिक क्षेत्र में एक असाधारण प्रयास है। राजनीति को भौतिक विषयोपभोग तथा पूंजीवाद और श्रमिकवाद के दलदल से समुद्‌धृत कर श्री स्वामी जी ने रामराज्य के मर्यादावाद और अध्यात्मवाद पर केन्द्रित किया। रामराज्य में प्रति व्यक्ति अपने कर्त्तव्य पालन द्वारा ही अपना, समाज का, राष्ट्र का, और विश्व कल्याण का सम्पादन कर सकता है और तदनुकूल अधिकार वहन का उसका सहज अधिकार है। पूंजी और श्रम का वास्तविक मूल्यांकन कर श्री स्वामी जी ने दोनों को परस्पर पोषक बनाया, परस्पर शोषण से स्वार्थान्धता व विद्वेष तथा वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों को प्रश्रय मिलेगा जो मानवमात्र तथा विश्व विनाश के कारण बनेंगे। इसी का नाम आसुरी शक्ति है, वह विश्व को, मानव को विनाश के कगार पर पहुँचा रही है। इस सर्वनाश से बचने के लिये रामराज्य के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। विश्व के सभी राजनीतिक वादों में रामराज्य ही सर्वोत्तमवाद है। जहाँ आज की राजनीति प्रायः सभी राजनीतिक दलों द्वारा भौतिक सुख साधनों के जुटाने के आदर्शों से प्रेरित और धर्म से विमुख है, वहाँ रामराज्यवाद ही आध्यात्मिकता पर आधारित धर्म नियन्त्रित नीति प्राणिमात्र को 'अमृतस्य पुत्राः' एक परमेश्वर की सन्तान मानकर उनके प्रति सहज भ्रातृता का समर्थन करता है। इस प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में विश्व की सुख शांति के एकमात्र उपाय रामराज्य को ही विश्व कल्याण का एकमात्र साधन प्रतिपादित किया गया है। प्रायः बारह सौ पृष्ठों का ग्रंथ, राजनीति, समाजनीति तथा नीतिशास्त्र के विद्वानों तथा सभी राष्ट्रहित चिंतकों के लिये सर्वोपकारक ग्रंथ रत्न है।
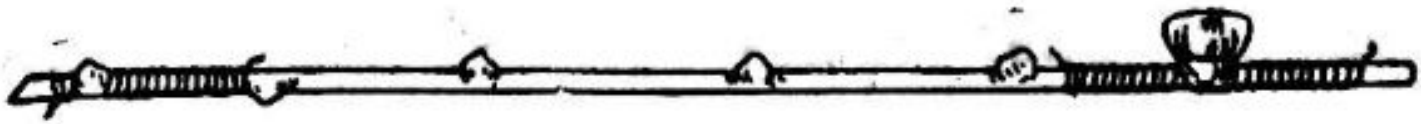
इसी प्रकार श्री स्वामी जी महाराज की लेखनी ने अनेक गम्भीर दुरुह तथा अखिल विश्व के उपयोगी साहित्य का सृजन किया। निशांधकार में विषयांध रजनीश के 'सम्भोग से समाधि' के सर्वपातक भ्रम का निवारण किया गया है। इस महापुरुष की लेखनी, वाणी, जीवन पट के सभी पटाक्षेप विश्व के सन्तप्त जीवों की संतापशांति के लोकोत्तर साधन हैं। इतिहास ऐसे महापुरुषों को सहस्राब्दियों के अन्तर से ही प्रकट करता है। आद्य शंकराचार्य के बाद यह यह अभिनव शंकराचार्य हिन्दू समाज एवं भारत राष्ट्र की इस विषम संकटपूर्ण परिस्थिति में एकमात्र आशा किरण अब लुप्त सी दीखती है। ब्रह्मद्रवी भागीरथी गंगा में स्वामी जी का पांच भौतिक विग्रह विलीन हुआ। सदा से ब्रह्मतत्व अपनी बाह्यशीला का संवरण कर अपने शाश्वत रूप में समा गया।

●●

......"बलात् धर्मान्तरित हिन्दुओं को शास्त्रानुसार गले लगाना ठीक ही है परन्तु जन्म से ही कट्टर मुसलमान और ईसाई आदि भी हिन्दू बनना चाहें तो नव्य-हिन्दू नाम से उनको संकलित कर लिया जाये और इतिहास-पुराण-श्रवण, अहिंसा, सत्य, गोमाता और गंगा की भक्ति, राम-नाम-जप, भगवद्भक्ति आदि भागवतप्रोक्त तीस धर्मों का पालन करते हुये आपस में ही रोटी-बेटी का सम्बन्ध रखते हुये वे अपना कल्याण कर सकते हैं। परन्तु जन्मना, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदिकों के साथ उनका भोजन, विवाहादि सम्बन्ध तथा अग्निहोत्रादि श्रौत-स्मार्त कर्मों में अधिकार मानना पाप के साथ-साथ लोक-दृष्टि से भी अत्यन्त हानिकारक होगा। धोखेबाजों को हिन्दू-समाज में प्रविष्ट होकर इसकी शृंखला को विनष्ट करके अपना स्वार्थ-साधन करने का पूरा अवसर मिल जायेगा, जो अन्ततोगत्वा शास्त्र और समाज-मर्यादा के विपरीत होने से हिन्दू जाति की रही सही विशेषता का विघातक होगा।

—करपात्र स्वामी

# हा हन्त ! महाकाल की निष्ठुरता

**पूज्यपाद १००८ श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी महाराज, चुरू (राजस्थान)**

आद्य शंकराचार्य के पश्चात वैदिक धर्म का सूर्य सभी दिग्-दिगन्तों में देदीप्यमान हो गया। भारतवर्ष के वाराणसी आदि सभी विद्या संस्थानों एवं धार्मिक नगरों में सभी मन्दिरों में शंख घंटा ध्वनि तथा वैदिक मन्त्रों का घोष निनादित होने लग गया था। चार्वाक, शून्यवादी तथा नास्तिकों के हृदय विदीर्ण हो गये थे और आर्यावर्त में पुनः सतयुग का दृश्य उपस्थित हो गया था। इतिहासवेत्ता जानते हैं कि इसी समय में वेद भाष्यकार सायणादि तथा वैयाकरण, नैयायिक, मीमांसक, साहित्यवेत्ता, ज्योतिविद् एवं सभी वेदांगों के महान तत्त्ववेत्ता भारत मही मण्डल में प्रादुर्भूत हो गये, परन्तु कुछ ही ही दिनों में बौद्धोंकी काली करतूत के कारण यवन, मलेच्छ, शक, हूणादिकों ने आर्यावर्त की दुर्गति कर डाली वैदिक ग्रंथों की होली जलाई गयीं, भाष्यों को भाड़ों में भून डाला गया और पुराणों को पीसकर पानी में प्रवाहित कर दिया गया। और मन्दिरों को धराशायी कर दिया। सैकड़ों मन जनेऊ तोड़ डाले गये।

सतियों का सौभाग्य लूटा गया और बलात्कार द्वारा द्विजों को म्लेच्छ बनाया गया। नगरों के नाम बदल दिये गये यही इतना ही नहीं एक दूसरी गौरांग ने जाति हृदय में यहभावना भर दी कि हमारे पूर्वज ऋषि महर्षि असभ्य और मूर्ख थे। सोलहवीं शताब्दी से २०वों शताब्दी तक बंगाल, गुजरात, आदि देशों में जो सुधारकगण प्रादुर्भूत हुए उनका यही रवैया रहा। बुद्धिमानों को यह भली-भाँति विदित है। पश्चिमछद्म वेशधारी वैदिकों ने भी यही पाठ पढ़ाया। मैक्समूलर, बेवर-जोन्स, जेकोबी मैकडोनल, मेकाले आदिकों का यही दृष्टिकोण था। भारत के ही राजाराममोहन राय, श्री दयानन्द तथा राजनैतिक महापुरुषों के मस्तिक में भी यही भावना आ गयी।

परन्तु एक दिन ब्रह्मलोक में एक विचार गोष्ठी बैठी गोलोक से भगवान कृष्ण भी पधारे और

**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः।**
**अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।**

इत्यादि विषयों पर मुक्तात्माओं ने निर्णय दिया कि शीघ्र ही एक दिव्य ज्योति को भारत वसुन्धरा पर प्रेषित करना चाहिये अस्तु। भगवति जाह्नवी के निकट ही एक ग्राम में हरिहरात्मक महादिव्यात्मा का प्रादुर्भाव हुआ।

श्री ब्रह्मचारी जीवन दत्त एवं पंडित स्वामी श्री विश्वेश्वराश्रम के पास एक गौरवर्ण ब्रह्म-

वर्चस्वी विशाल मूर्ति को मैंने अद्वैत सिद्धि, खण्डन खण्ड खाद्य, न्याय मुक्तावली, शंखर मीमांसा वार्तिक आदि ग्रंथ कुञ्जों सहित देखा। सायंकाल अनेकों शास्त्रों के आचार्यों के साथ गंगातट पर शास्त्रार्थ भी चला और दूसरे दिन प्रातःकाल श्रीमद्भागवत की रास पञ्चाध्यायी प्रवचन उसी लंघोटी बन्ध महात्मा की पीयूष वाणी द्वारा श्रवण किया और उसी दिन रात्रि के बारह बजे तक एक पर्ण-शाला में यह विचार भी हुआ कि दिग्विजय की यात्रा कब से प्रारम्भ की जाय। भयंकर सनातन धर्म का ह्रास और वर्णाश्रम धर्म का विद्रोह किस प्रकार से दूर होगा। इन दिनों श्रीगाँधी जी गोलमेज कांफ्रेंस में लन्दन गये थे। बड़ी आशायें थी। परन्तु उस महात्मा ने कहा कुछ होने हवाने वाला नहीं है और भी भयंकर धर्म नाश होगा। यह लंघोटो बन्ध फकीर केवल एक पतली लंघोटी रखता था और भिक्षा माँगकर हाथ में भी भोजन कर लेता था। गंगाजल भी सुलभता से प्राप्त हो जाता था। हम सभी छात्र मंडली ने परम हंस और करपात्री इस नाम से उनको विभूषित कर दिया परन्तु यह महात्मा यहां से चल दिये। ऋषिकेश, बृन्दावन, मथुरा, काशी आदि स्थानों में तथा भारत के सभी ग्रामों में जहाँ भी योग्य पंडित का नाम सुना तीन चार नैष्ठिक ब्रह्मचारियों के साथ धर्म रक्षार्थ यात्रा शुरू कर दी। चारों धाम तथा भगवति जाह्नवी माता की पदाति यात्रा चलने लगी। काशी, काश्मीर, कलकत्ता, कुम्भकोणम, नासिक, बम्बई सभी नगरों में धर्म की प्रचार की डिमडिम घोषणा प्रारम्भ हो गयी।

काशी आदि के महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा, चिन्न स्वामी, अनन्त कृष्ण शास्त्री, तर्क-पंचानन श्री कृपालु जी आदि महारथियों ने धर्मसंघ की स्थापना का बिंध्येश्वरी महामाया के प्रांगण में बिगुल बजा दिया और कुम्भ के विशाल जन समूह में करपात्री जी चमकने लगे और आशा बन गयी कि भारत का भाग्य जागृत हो गया।

बिना राजनीति में प्रवेश किये कार्य सिद्ध न होगा इसलिये रामराज्य की भूमिका के लिये एक महाग्रंथ 'मार्क्सवाद और रामराज्य' इस महात्मा की स्वर्ण लेखनी से जेल में बैठे-बैठे ही लिख दिया। हिन्दू कोड बिल, मन्दिर प्रवेश बिल तथा गोरक्षार्थ सत्याग्रह आदि के लिए लाहौर, बम्बई, काशी, आगरा, दिल्ली की जेलों में भी यात्रा करनी पड़ी। ज्योतिष, वेद, महाभारत और रामायण इन पर किये गये भ्रान्तवादियों के आक्षेपों को समूलोन्मूलन करने के लिये रामायण मीमांसा, विचार पीयूष, वेदार्थ पारिजात आदि महाग्रंथों का निर्माण करके विद्वानों को एक मार्ग दिखला दिया। परन्तु कलि-देवता को यह सब अच्छा नहीं लगा। उसने महाकाल के दरबार में अपने कलियुगी दृश्य की रक्षा के लिए आवेदन पत्र प्रस्तुत कर दिया। उस महाकाल ने पृथ्वी लोक के इस महात्मा को उठाकर ब्रह्मलोक में ब्रह्मलीन कर दिया। हम सभी भारतवासी ठगे से रह गये। पर हम सब को समवेत होकर उनके मार्ग पर चलकर धर्म रक्षा के उनके प्रयास को आगे चलाना चाहिये। □□

# निरंकुश पाण्डित्य के धनी श्री स्वामी करपात्री जी महाराज

ले० १०८ श्री स्वामी दामोदरानन्द तीर्थ जी, पक्काघाट, बागपत, जनपद मेरठ।

मैं राजस्थान पारीक संस्कृत महाविद्यालय में पढ़ता था कि भगवद् कृपा से अन्तःकरण में वैराग्य का उदय हुआ। संसार को छोड़कर संन्यास ग्रहण की प्रबल आकांक्षा से अभिभूत होकर मैंने वैशाख शुक्ला चतुर्दशी विक्रमाब्द १९९९ में विद्यालय छोड़ दिया। मैं उस समय दण्डी संन्यासियों के विषय में कुछ भी नहीं जानता था। उपर्युक्त विद्यालय के प्रधानाचार्य थे पं० सत्यनारायण शास्त्री जो बड़े विद्वान थे आयुर्वेद, ज्योतिष एवं व्याकरण तीन विषयों के आचार्य थे काव्यतीर्थ थे; वह यद्यपि राजस्थान के उक्त विद्यालय के प्राचार्य थे परन्तु पूर्वी उत्तर प्रदेश निवासी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। मैं निरा विद्यार्थी था मुझे महात्माओं के बारे में कुछ भी ज्ञान नहीं था। सन्त महात्माओं से कोई परिचय भी नहीं था बस यह दृढ़ निश्चय था कि ब्राह्मण शरीर से ही संन्यास दीक्षा ग्रहण करूंगा। मैंने उन्हीं शास्त्री जी के चरणों में निवेदन किया कि किसी उत्तम ब्राह्मण संन्यासी का पता बताने की कृपा करें, उन्होंने बहुत विचारोपरांत जिन महापुरुष का नाम मुझे बताया वह थे हमारे धर्म सम्राट स्वामी करपात्री जी महाराज। मैंने राजस्थान छोड़ दिया ऋषिकेश जा पहुँचा। मैंने सुना कि कैलास आश्रम में 'गिरि', 'पुरी' सम्प्रदाय के साधु रहते थे; उस समय वहाँ के मण्डलेश्वर श्री जनार्दनगिरि जी महाराज थे। वहाँ को जाते समय एक मार्ग में मिले महात्मा उनसे पूछने पर बताया कि दण्डी आश्रम ऋषिकेश में आप पधारें। जो महात्मा मिलता मैं बड़ी उत्सुकता से उसके ब्राह्मणत्व का परिचय प्राप्त करने का प्रयास करता। सभी तो अपने को ब्राह्मण-शरीर बताते। मैंने गिरि जी महाराज से जिज्ञासा की तो उन्होंने कहा कि काली कमली वाले क्षेत्र में जाओ वहाँ ऐसे महात्मा आपको मिल जायेंगे। मैं सद्गुरु की खोज में वहाँ भी गया परन्तु मुझे वहाँ बताया गया कि तुम मायाकुण्ड स्थित दण्डी आश्रम ऋषिकेश में जाओ; मैं वहां गया। वहां दण्डी संन्यासियों ने पूछा कि इस २८ वर्ष की कच्ची उम्र में संन्यास दीक्षा क्यों लेना चाहते हो। समाज पर भार क्यों बनते हो? वहाँ के ब्रह्मचारी ने कहा कि अभी सेवा करो, अध्ययन करो। वहां आकर ब्रह्मचारी ने बताया कि रामकुंड-राममन्दिर, त्रिवेणीघाट पर स्वामी करपात्री जी का भाषण हो रहा है, मैं तत्काल चल पड़ा, त्रिवेणीघाट पर वीर राघवाचार्य जी महाराज का भाषण हो रहा था। अनेक सन्त, महात्मा मंच पर विराजमान थे, अनुमानतः सबसे ऊंचे सिंहासन पर विराजमान दण्डी संन्यासी ही स्वामी करपात्री जी महाराज थे, परन्तु अकस्मात सभा विसर्जित हो गयी और सब चले गये मैं पास पहुँच कर भी फिर पृथक ही रह गया। दूसरे दिन जंगल में गया फिर दंडी आश्रम में पहुँचा तो वहाँ मेड़ता (राजस्थान) के एक संन्यासी थे कहने लगे 'तुम संन्यास क्यों लेते हो?' 'तुम झूठ क्यों बोलते हो,' 'खर्च-वर्च भी है?'— भई निश्चय कर लो, वेदपाठियों से मुहुर्त निकलवा लो। ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी का मुहुर्त बताया। अगले दिन

ब्रह्मचारी फिर बोला छोटी अवस्था में क्यों संन्यास लेते हो ? अभी कर्मकांड का अभ्यास करो, अध्ययन करो'—मैंने निवेदन किया कि मेरा तो दृढ़ निश्चय है संन्यास लेने का। तभी मुझे पता चला कि महाराज करपात्री जी कोयल घाटी स्थित एक कुटिया में ठहरे हैं—वहाँ दो कुटिया थी एक में थे स्वामी प्रभास भिक्षु जी महाराज और दूसरी में स्वामी करपात्री जी विराजमान थे। पतला-दुबला शरीर, मात्र लंगोटी एवं एक हल्का सा—उपरिवस्त्र धारण किये अलौकिक आभा से युक्त मुखमंडल वाले लगभग ३४-३५ वर्ष के एक युवक संन्यासी विराजमान; कोई लेख लिख रहे थे। मैंने प्रणाम किया, बैठ गया। वह लेखन कार्य में लीन रहे। मैं बैठा रहा। फिर सहसा पूछा उन्होंने—कहाँ से आये हो ? मैंने कहा—'राजस्थान से'। फिर बोले 'जाओ, गर्मी हो रही है। मैंने निवेदन किया—'भवदभ्य:काचित् प्रार्थना अस्ति।

स्वामी जी ने पूछा—'का सा प्रार्थना ?'
मैंने बताया—'भवदभ्यो दीक्षाम् गृहीतुं इच्छामि।'
वे बोले—'का सा दीक्षा ?'
मैंने निवेदन किया—'संन्यास दीक्षैव।'
स्वामी जी का प्रश्न था—'को हेतु: संन्यास ग्रहणे ?'
मैंने करबद्ध निवेदन किया—'वैराग्यमेव।'
स्वामी जी ने पूछा—'किं विवाहसंस्कार: सञ्जात:।'
मैंने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया—'नैव।'
महाराज ने फिर पूछा—'किम् अप्राप्यत्वात् ?'
मेरा उत्तर था—'महाराज ! तस्मिन विषये मया प्रयत्नमपि न कृतं।'
स्वामी जी ने आगे प्रश्न किया—'तर्हि किम् अधीतम् त्वया ?'
मैंने निवेदन किया—'व्याकरणशास्त्रस्य मध्यम परीक्षा उत्तीर्णा। शास्त्री प्रथमखंडे प्रवेशं कृत्वा अधुना अध्ययनम् परित्यक्तम्।'
महाराज ने निर्देश दिया—'सायंकाले श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्धस्य कथा भविष्यति, तच्छृणु।' अवकाशं लभ्यते चेत् प्रात:काले मांडूक्य उपनिषद पाठं भविष्यति। तदपि शृणु।'

मैंने अपने संकोची स्वभाववश आगे कुछ भी निवेदन न कर गंगातट पर विचरता रहा।

कुछ दिन पश्चात गंगास्वरूप ब्रह्मचारी का निधन हुआ। उसी में महाराज स्वामी करपात्री जी भी पधारे थे। वहीं पर दंडी आश्रम में श्री विश्वेश्वरानन्द तीर्थ जी महाराज मुमुक्षु धाम काशी भी विराजमान थे उन्हीं से मैंने संन्यास ले ली। ८-६ दिन तक उनके भाषण हुये थे। यद्यपि नित्य वहां जाता रहा श्री चरणों में उपस्थित होता रहा परन्तु मैं अपने संकोची स्वभाववशात् कभी

कुछ भी उनके समक्ष निवेदन न कर सका बस उपदेश श्रवण कर हृदयंगम करता रहा—कभी उनको अपना परिचय तक नहीं दिया। उनके सौम्य-स्वरूप, अद्भुत-वैराग्य, प्रकांड-पांडित्य, अनुपम-त्याग महान योग-साधना एवं कठोर तपस्या से प्रेरणा मात्र ग्रहण करता रहा और कृतकृत्य होता रहा। वेद, शास्त्र, दर्शन, पुराण, स्मृति सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय पर उनका पांडित्य निरंकुश था। उनके जैसा अद्भुत व्यक्तित्व का धनी संन्यासी भारत में दूसरा नहीं दीखता। उनके मन में देश धर्म की दुर्दशा से बड़ी पीड़ा होती थी। वह चाहते थे कि सत्कर्मों के अनुष्ठानादि से इस कलियुग को सतयुग बना दें। गंगासागर से अमरनाथ, बन्नू, कोहाट पेशावर तक, रामेश्वरम से गंगोत्री तक पैदल यात्राएं करते थे और हर ग्राम, नगर, मुहल्ले-मुहल्ले में धर्मोपदेश करके चिरप्रसुप्त भारतीय जनता को उद्‌बोधित करते थे। विशेषतः पंजाब आदि सीमांत प्रदेशों में उस समय जो इन योगी महात्मा ने स्पष्ट-स्पष्ट शब्दों में भविष्य वाणियाँ की थीं वह अक्षरशः सत्य सिद्ध हुयीं। हमें पंजाब की वीर प्रजा में उनके द्वारा कहे गये वे शब्द आज भी अच्छी तरह स्मरण हो रहे हैं कि 'अंग्रेज जाने वाले हैं, हिन्दुओं! तुम तुम संभल जाओ। अपने पैरों पर खड़े हो। अपना संगठन दृढ़ बनाओ। ईश्वर की प्रार्थना करो।' स्वामी जी बड़े ही निर्भीक एवं सत्य वक्ता थे। और सत्य कटु होता है। प्रत्येक मनुष्य के वश की बात नहीं है कि वह कटु सत्य को सहन कर ले। अतः यदा कदा स्वामी जी को उस परतन्त्र भारत में नेतृत्व की आलोचना भी करनी पड़ती थी जिसे लोग कभी-कभी कांग्रेस का विरोध मानकर सभा से उठकर चले भी जाते थे। वह स्वामी जैसे सतयुगी निस्पृह संत की सत्यवाणी को कांग्रेस की निंदा परक मानकर पलायन कर जाते। परन्तु स्वामी जी एक सच्चे देशभक्त, एक सच्चे कल्याणकारी के रूप में कुछ भी परवाह न करते हुए सतत् एक छोर से दूसरे छोर तक धर्म यात्राएं करते रहे। और अपने सिद्धांतों के प्रचार-प्रसार एवं धर्म संरक्षण के लिये उन्होंने आन्दोलन किये, जेल यात्राएं कीं, पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया निर्वाचन जैसे लौकिक कार्य में भी सक्रियरूप से भाग लेकर धार्मिक सनातन सिद्धांत रक्षण में तत्पर रहे। उनके इस गोहत्याबन्दी आन्दोलन में सन १९४७ में अनेकों साधु, सन्त, महात्माओं, विद्वानों एवं सर्व साधारण जनता ने डटकर भाग लिया। उन्होंने भारत की अखंडता एवं गौ की रक्षा के लिए संन्यासियों को कारागार भरने के लिए प्रेरित कर अपनी धर्मनिष्ठा एवं कर्मठता का अपूर्व परिचय दिया। हमने भी उस धर्मयुद्ध में भाग लेकर जेल यात्रा की और दिल्ली तिहाड़ जेल में कारावास किया। उनके जैसा महान संन्यासी युगों में अवतरित होता है। उन्होंने लगभग ५५ वर्षों तक अथक परिश्रम कर धर्म, कर्म, पूजा-पाठ, यज्ञ, अनुष्ठान, जप, तप, गो, ब्राह्मण, वेद, शास्त्र, वर्ण-आश्रम कहाँ तक गिनायें सभी मूल सनातन भारतीय तत्त्वों को संरक्षण प्रदान कर स्थायित्व दिया। आज उनकी स्मृति शेष है। मार्गदर्शन के लिये उनके द्वारा विरचित ग्रंथों की धरोहर सनातन धर्म के पास विद्यमान है आवश्यकता है आज उसके व्यापक प्रचार-प्रसार की। सभी धर्म प्रेमियों को संगठित होकर इधर प्रयत्नशील होना चाहिये—यही कल्याण का मार्ग है। □□

# पूज्य गुरुदेव के कुछ संस्मरण

**१००८ स्वामी श्री सदानन्द सरस्वती श्री वेदांती स्वामी जी महाराज, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी।**

मैं अध्ययन करने हेतु सन १९४१ में वाराणसी आया उस समय स्वामी जी महाराज गंगा तरंग नगवा में निवास करते थे। मैं रुइया संस्कृत विद्यालय नगवा में अध्ययन करता था। प्रतिदिन सायं काल स्वामी जी का दर्शन करने के लिये गंगातरंग जाया करता था।

१९४५ में अस्सी घाट से रामनगर के सामने तक गंगा तट पर महाराज श्री का विशाल यज्ञ सम्पन्न हुआ। छात्र होने के नाते उस यज्ञ में मैं भी स्वयंसेवक का कार्य किया। उस समय पूज्य स्वामी जी प्रतिदिन ६ घन्टा तक अनवरत भाषण और शंका समाधान करते थे। उसको सुनकर प्रभावित हुआ और उनके शरण में आ गया। समय-समय पर कुछ पूछा करता था। जिसका समाधान श्री चरण करते थे उसी में से कुछ संस्मरण दे रहा हूँ।

एक बार दिल्ली में महाराज को पंडित किशनचन्द के यहाँ १०४ डिग्री ज्वर हो गया। मैंने कहा कि महाराज जी आप स्नान न करें। महाराज जी ने कहा कि यह बताओ तुम शिष्य हो या गुरु ? मैंने कहा कि मैं शिष्य हूँ तब कहाकि जल ले आओ मैं स्नान करूंगा। जल लाया महाराज जी ने स्नान और पूजन किया। इसे देखकर मुझे अनुभव हुआ कि महाराज जी को देहध्यास नहीं था।

गंगातरंग की घटना है कि महाराज जी को एक बार कुछ ज्वर और बहुत जोरों से खांसी आने लगी कई दिनों के बाद श्री वृजमोहन दीक्षित बुलाये गये उन्होंने कहा कि महाराज जी यात्रा स्थगित कर कुछ दिन विश्राम करें और शरीर पर ध्यान दें। महाराज जी ने कहा कि कवर्धा अधिवेशन के लिये वचन दे दिया है अतः वहाँ जाना है। शरीर पर ध्यान तो अविवेकी लोग दिया करते हैं। उन्होंने एक चौपाई कहकर कवर्धा के लिये प्रस्थान कर दिया। वह चौपाई यह थी —

**सेवहिं लखन सीय रघुबीरहिं।**<br>**जिमि अविवेकी पुरुष शरीरहिं॥**

एक बार बहुत सम्पन्न एक भक्त महाराज जी के पास आये और उन्होंने कहाकि हम लोग भक्त हैं हमारा भी स्मरण कभी करते हैं। महाराज जी ने कहा यदि गुरु भगवान का स्मरण छोड़कर अपने शिष्य भक्तों का स्मरण करने लगे तो दोनों का पतन हो जाता है। अतः गुरु को सदा भगवान का स्मरण करना चाहिये। गुरुमन्त्र तथा गुरु का स्मरण करने से दोनों का कल्याण होता है।

दुर्भाग्य है कि आज के अधिकांश गुरुलोग भगवान को छोड़ कर शिष्य-शिष्याओं का स्मरण करते हैं। इससे दोनों का पतन होता है।

एक बार कांग्रेस के विशिष्ट एक नेता आये उन्होंने कहाकि महाराज वस्तुतः हृदय से हम

लोग आप की ओर हैं केवल शरीर कांग्रेस में है। महाराज जी ने कहाकि हृदय तो कोई देखता नहीं शरीर ही सब लोग देखते हैं इसलिए आप शरीर से रामराज्य में काम करें और हृदय कांग्रेस में लगाये रहें। निरुत्तर होकर वे चले गये।

एक बार सन्मार्ग के प्रधान सम्पादक श्री गंगाशंकर मिश्र गंगातरंग में कुआँ खुदवा रहे थे। कुआँ खोदकर तैयार हो गया किन्तु जल नहीं निकल रहा था। मिश्र जी बहुत दु:खी थे इतने में ही महाराज जी पैदल घूमते हुये गंगा स्नान कर कमण्डल में जल लिये हुये पहुंचे और कहा कि मिश्र क्यों दु:खी हो। कुएं की तरफ संकेत करते हुये कहा कि इसमें जल नहीं आ रहा है। महाराज जी वहां पहुँचकर अपने कमण्डल का जल छोड़ा। जल छोड़ते ही कुएं में जल की धारा निकल पड़ी। सभी लोग प्रसन्न हो गये। आज भी नगवा के पुराने लोग इस घटना को जानते हैं। मिश्र जी तो शिष्य ही बन गये।

एक बार महाराज जी से पूछा था कि संसार और ब्रह्म में भेद क्या है? महाराज जी ने कहा कि वृत्ति जन्य ज्ञान को ही संसार कहते हैं। वृत्ति रहित बोध को ब्रह्म कहते हैं। ऐसे बहुत से वेदांत सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर दिया है। पुस्तक रूप में वह मेरी वेदांत प्रश्नोत्तरी के रूप में प्रकाशित हैं।

विन्ध्याचल लक्षचंडी यज्ञ के अवसर पर विन्ध्याचल पहाड़ पर टहल रहे थे गर्मी का दिन था। महाराज जी ने कहा कि गेरुवा तालाब से जल लाओ। एकांत है यहां नित्य क्रिया करें। मैं कमन्डल में जल लेकर आया। महाराज जी ने पूछा कि जल गरम है या ठंडा ? मैंने कहा महाराज जी मैं समनस्क नहीं था। महाराज जी ने कहा कि साधना के लिये समनस्क न होना अच्छी बात है किन्तु अन्यमनस्क नहीं होना चाहिये।

अन्य बहुत से संस्मरण हैं वह पुस्तक के रूप में प्रकाशित किये जायेंगे।
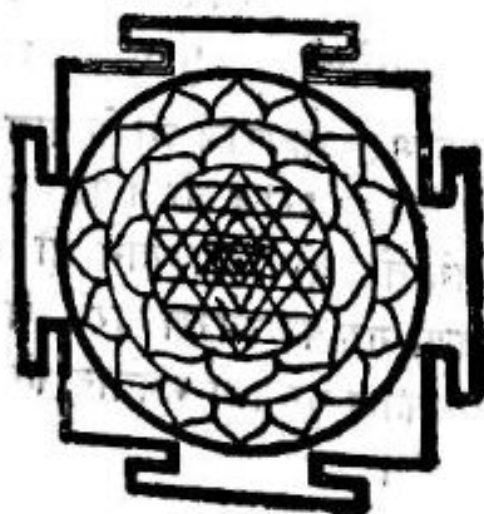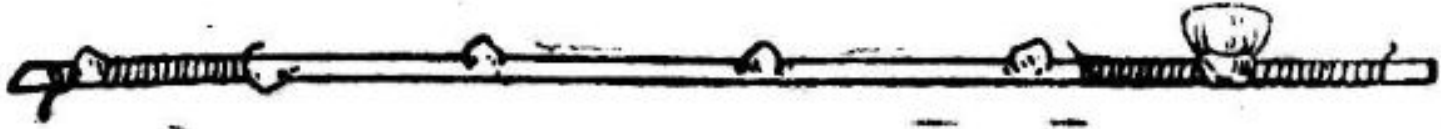
# श्रीमत्करपात्रचरणसरसीरुहपादुकास्तवनम्

पूज्यपाद १००८ स्वामी श्री सुखबोधाश्रम जी महाराज,
गणेश मन्दिर, अनूप शहर (बुलन्दशहर)

वैराग्यं यस्य बाल्ये वयसि विकसितं येन तप्तं तपस्तत्-
स्त्रीपुंसैः प्रेक्षितं यत् तरुणिमनि महत् दत्तदन्ताङ्गुलीकैः ॥
वैदुष्यं सर्वशास्त्रेष्वपि विदितचरं विश्रुतं यस्य लोके-
सोऽयं श्रीपाणिपात्रो जयति हरिहरानन्दनामा यतीन्द्रः ॥ १ ॥

बाल्यावस्था में ही जिनका वैराग्य विकसित हुआ, तरुण अवस्था में ही जिन्होंने ऐसा तप किया कि जिसको देखने वाले स्त्री-पुरुष दांतों तले उँगली दबा गए, सभी शास्त्रों में जानी मानी जिनकी विद्वत्ता संसार में प्रसिद्ध है, ऐसे हरिहरानन्द सरस्वती श्री करपात्री जी महाराज का उत्कर्ष सबसे बढ़कर है ॥ १ ॥

श्रीमान् हरिहरानन्दो यस्य संज्ञा सरस्वती-
यदानने पद्मसमेऽनरीनृत्यत् सरस्वती ॥ २ ॥

जिनके मुखकमल में सरस्वती नृत्य करती थी, ऐसे यह श्रीमान् हरिहरानन्द सरस्वती कहे जाते हैं ॥ २ ॥

श्रीकृष्णबोधाश्रम संज्ञकानाम्-
ज्योतिर्मयं पीठमधिष्ठितानाम् ॥
प्रेमास्पदं यः सुकृताभिधानो-
जयत्यसौ श्रीकरपात्रवर्य्यः ॥ ३ ॥

ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य श्री कृष्णबोधाश्रम जी महाराज के प्रेमपात्र यह पवित्र नाम वाले श्री करपात्री जी महाराज हैं ॥ ३ ॥

करपात्राभिधानेन प्रसिद्धं भारताजिरे
धर्मसम्राजमाहुर्यं धार्मिका वेदवादिनः ॥ ४ ॥

भारत में करपात्री नाम से प्रसिद्ध इन महात्मा को वेदों के जानने वाले धार्मिक विद्वान् धर्मसम्राट् कहते हैं ॥ ४ ॥

शङ्कराचार्य पीठानि येऽलङ्कुर्वन्ति साम्प्रतम्-
तेऽप्याचार्या यदादेशं शिरसा धारयन्त्यहो ! ॥ ५ ॥

इस समय शंकराचार्य के पीठों पर विराजमान सभी आचार्य इनकी आज्ञा को शिरोधार्य करते हैं ॥ ५ ॥

किमतः परमेतस्य यशो गीयेत मादृशैः-
प्रसृतं सौरभं यस्य दिशासु विदिशासु च ॥ ६ ॥

जिनके यश की सुगन्धि सर्वत्र फैल रही है, उनका इससे अधिक यशोगान मैं कैसे कर सकता हूं ॥ ६ ॥

सर्वत्र यस्य करपात्र इति प्रसिद्धिः-
श्रीमान् प्रशस्तगुणपात्रमयं स एकः ।
यत्सूक्तयो द्रुतविलम्बितगीति सौख्य-
सम्पादनेऽमृतरसोज्ज्वलनिर्झरिण्यः ॥ ७ ॥

अनेक उत्तमगुणों के एकमात्र पात्र यह करपात्री जी अद्‌भुत ही हैं। द्रुतविलम्बित छन्द के गायन का सुख प्राप्त कराने वाली इनकी सूक्तियाँ अमृत रस को बहाने वाली नदियाँ हैं ॥ ७ ॥

शास्त्रेष्वगाधधिषणस्य च राजनीतौ-
कस्तस्य यः प्रतिभटो भवितुं समर्थः-
मत्ताः स्वतन्त्र गतयोऽपि गजा अकस्मात्-
श्रुत्वा स्खलन्ति खलु केसरिणो निनादम् ॥ ८ ॥

सम्पूर्ण शास्त्रों में और राजनीति में भी जिनका अगाध-गम्भीर ज्ञान है, उनका प्रतिद्वन्द्वी बनने में किसकी सामर्थ्य है। मस्ती से झूमते हुये चले आने वाले मदोन्मत्त हाथी, सिंह की दहाड़ सुनते ही डगमगा जाते हैं ॥ ८ ॥

धर्मग्लानिमवेक्ष्य यस्य हृदयं दूनं दयानिर्भरम्-
शान्तं शाश्वतमप्यभूद्विकलता कल्लोलिनी चञ्चलम् ।
धेनूनामपि दुर्दशां प्रतिदिनं तासां वधं वीक्ष्य यः-
झञ्झावात निपातितद्रुमदलोपमं शरीरेऽक्षश्रयत् ॥ ९ ॥

निरन्तर धर्म की हानि देखते हुये जिनके दयालु हृदय में दुःख होता रहा है, गौओं की दुर्दशा देखकर और प्रतिदिन उनकी हत्याओं की कहानियाँ सुन-सुनकर आँधी से गिराए गए पेड़ की पत्तियों के समान जिनका शरीर सूख गया था ॥ ९ ॥

सप्ताहावधि भोजनं परिहरन् कृत्वाष्टमे पारणाम्-
सप्ताहानि पुनस्तथैव कृतवान् यः पारणामष्टमे ।
यस्यैवं कतिचित् समा व्यतिययुः कृच्छ्रं तपः कुर्वतो-
देहः काञ्चन सन्निभः पुनरभूत् पीतो हरिद्रासमः ॥ १० ॥

सात सात दिन कुछ न खाकर आठवें दिन व्रतान्त भोजन करते हुये उन्हें कई साल बीत गए थे। सुवर्ण जैसा गौर वर्ण शरीर हल्दी जैसा पीला पड़ गया था। इनका यह कठोर तप हमने देखा था ॥ १० ॥

**श्रीमद्भागवतस्य चापि नियतं पारायणं श्रद्धया-**
**व्याख्यानं च सभासु जागरयितुं धर्मावनार्थं प्रजाः।**
**यश्चक्रे कृतिनां वरो नच पुनः कृत्वापि बद्धः क्वचित्-**
**ब्रह्माग्नावजुहोत् कृताकृतमिदं सर्वं परः संयमी ॥ ११ ॥**

इन दिनों श्रीमद्भागवत का साप्ताहिक पाठ भी श्रद्धापूर्वक होता था, धर्म रक्षा के निमित्त जनता को जगाने के लिये सभाओं में व्याख्यान भी होता था, यह सब करते हुये भी इनके फलों में उनकी आसक्ति नहीं थी, उन्होंने ज्ञान की अग्नि में इन कर्मफलों की आहुति दे दी थी ॥ ११ ॥

**विद्या यस्य परा परामुपगता काष्ठां तथैवापरा-**
**ऋग्वेदादिभिदा चतुर्दशविधाथाष्टादशत्वं गता।**
**द्वे विद्ये अपि वेदितव्यविषयेऽन्योन्यभूयिषातां तथा-**
**शय्यायां स्वयमागते रसवशात् कान्ते यथा कामिनः ॥ १२ ॥**

वेदों में परा और अपरा इन दो विद्याओं का वर्णन मिलता है। ब्रह्मज्ञान को परा विद्या कहते हैं, चार वेद-६ वेदाङ्ग-आन्वीक्षिकी त्रयी-वार्ता और दण्डनीति यह १४ विद्याएँ हैं, इनमें पुराण-न्याय मीमांसा और धर्मशास्त्र मिला देने से १८ हो जाती हैं। यह सब मिलकर अपरा विद्या है। यह दोनों विद्याएँ करपात्री जी की शय्या=शब्द रचना में ऐसे स्वयं आती थीं, जैसे प्रेमपाश में खिंची दो प्रेमिकाएँ किसी कामी की शय्या पर अपने आप चली आती हैं ॥ १२ ॥

**यः समन्वयसाम्राज्यसंरक्षणपदाभिधम्-**
**निबन्धं कृतवान् पूर्वं विद्याद्वयमतूतुषत् ॥ १३ ॥**

इन्होंने बहुत पहले समन्वय साम्राज्य संरक्षण नाम का निबन्ध लिखा था, इन दोनों विद्याओं का विरोध हटाकर उन्हें सन्तुष्ट किया था ॥ १३ ॥

**यैः कैश्चित् पण्डितंमन्यैः विरोधो दर्शितस्तयोः-**
**परिहृत्य विरोधं तं सौमनस्यमतिष्ठिपत् ॥ १४ ॥**

किन्हीं अधकचरे पण्डितों ने इन दोनों में विरोध करा दिया था, करपात्री जी ने विरोध हटाकर प्रेम करा दिया था ॥ १४ ॥

**प्रसन्ने तेन ते विद्ये परापरपदाभिधे-**
**मिथः सापत्न्यमुज्झित्वा परमेनमुपेयतुः ॥ १५ ॥**